करन्सी

विषय सूची।

प्रकरण--विषय पृष्ठ संख्या

समर्पण ।

अग्रवाल वंश भूषण, समाज सुधारक

तथा

राष्ट्र भाषा हिन्दी के अनन्य प्रेमी

देशभक्त श्रीमान् सेठ जमनालाल जी बजाज

के

कर कमलों में

लेखक का यह तुच्छ उपहार

सादर समर्पित है ।

प्रस्तावना ।

इस पुस्तक की भूमिका लिखना मैं आवश्यक नहीं समझता; कारण, कि पुस्तकगत विषय मूल विषय की भूमिका के तुल्य भी नहीं । करन्सी या मुद्रा-प्रचलन जैसा क्लिष्ट विषय साधारण रीति से समझा देने की शक्ति यद्यपि मुझ में नहीं है तदपि जो कुछ प्रयास किया गया है वह इसी दृष्टि से कि हिन्दी साहित्य के लिए यह विषय अपरिचित अथवा नवीन नहीं तो प्रारंभिक अवश्य है । मेरी इच्छा थी कि प्रत्येक विषय विस्तार पूर्वक समझायाजाय; किन्तु कई कारणों से ऐसा न किया जा सका । आशा है कि इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण तक पाठकगण हमें इस त्रुटि के लिये क्षमा करेंगे ।

मेरा विचार था कि करन्सी और बैंकिंग दोनों सम्मिलित प्रकाशित हों. इसी से बहुत पहले से इस प्रकार का विज्ञापन दिया जा चुका था । दुर्भाग्य से मैं बीच में अस्वस्थ हो गया और कई मास तक कठिन रोगक्रान्त रहा । यह विलम्ब देखकर मेरे पास बीसियों पत्र इस आशय के आये कि पुस्तक यथा शीघ्र प्रकाशित हो । इस समय तक करन्सी के प्रकरण ही चल रहे थे । ऐसी दशा में बैंकिंग के लिए और अधिक ठहर कर विलम्ब करना कहां तक उचित होता, यह सहृदय पाठक स्वयमेव विचार करलें ।

प्रस्तुत पुस्तक की विषय सामग्री एकत्र करने में मुझे इसी विषय की अनेक अंग्रेजी पुस्तकों और समाचार पत्रों की सहायता लेनी पड़ी है, विविध हिन्दी मासिक तथा समाचार पत्रों का अवलम्बन लेना पड़ा है । इन सबके लिए मैं उनका अतीव कृतज्ञ हूं । इन पत्रों का नामोल्लेख मैंने यथा संभव कर दिया है । तथापि भूल से जो छूट गया हो उसके प्रति मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

मैं समझता हूं कि मेरी इस कृति में नवीनता नहीं है। न तो इसके भावों में विशेषता है और न लेखन चातुर्य ही है। मैंने इस पुस्तक में अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा है। मेरा कार्य तो यही है कि मैंने इस विषय की बिखरी हुई सामग्री को एकत्र अवश्य कर दिया है। इस कार्य में भी घोर त्रुटियां हो गई हैं। प्रबंधक्रम यथोचित नहीं रह सका है और शीघ्रता में विदेशी विनिमय जैसा आवश्यक अंग भी पूरी तरह वर्णित नहीं हो सका है। इन सब बातो के लिए मुझे खेद है। कार्य एवं दन प्रारं- भिक होने के कारण यदि मैं इन त्रुटियों तथा प्रेस सम्बंधी भूलों के लिए क्षमा प्रार्थी होऊं तो धृष्टता न होगी।

हिन्दी साहित्य के परम पूजनीय लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक श्रीयुत कन्नोमल एम. ए. जज रियासत धौलपुर एव श्रीयुत शिवप्रशाद मोदी ए. सी. आर. ए. ऑडिटर ऑफ एकाउन्ट्स धौलपुर राज्य ने कष्ट उठाकर इस कृति मे अपने एक शब्द' तथा 'भूमिका' का योग देकर पुस्तक के गौरव को तो बढाया ही है साथ ही लेखक को भी समुत्साहित एवं कृतज्ञताबद्ध किया है।

स्वनाम धन्य परमोदार देशभक्त श्री जमनालालजी बजाज को अपनी क्षुद्रकृति समर्पित कर मुझे सबसे अधिक संतोष हुआ है।

अन्त में जिन के उत्साह सम्वलन से मुझे इस पुस्तक के लिखने का साहस हुआ तथा जिनके अपरिमित व्यय से आज यह रचना इस रूप मे पाठकों के करकमलो की शोभा बढ़ा रही है उन हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी सरल हृदय शुभ चिन्तक श्री सेठ अमरचंदजी बैद के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता हूं।

आगरा,
दिसम्बर १९२१

गौरीशङ्कर शुक्ल,
सम्पादक "धर्माभ्युदय

भूमिका ।

गौरीशंकर जी की बनाई हुई "करन्सी" की हिन्दी भाषा की पुस्तक के कुछ प्रकरणों को मैंने पढा । इसकी भाषा शुद्ध व सरल है । इसकी रचना साहूकारी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने वालों के लाभार्थ की गई है । उन्होंने ग्रेपम महाशय के सिद्धान्तों के मुख्य भावार्थ को बड़े सरल शब्दो में व्यक्त किया है । सिद्धान्तों के मूल का मतलब न छोड़ते हुये उन्होंने ऐसे शब्द प्रयोग कीये हैं कि ग्रेषम महाशय के सिद्धान्तों का आशय समझने में कोई कठिनाई नहीं होती । देखिये—"यदि एक ही धातु के सिक्के जो तोल और रुप में भिन्न प्रकार के हों एक साथ एक ही मूल्य में प्रचलित किये जायँ तो खराब सिक्के अच्छे सिक्कों को प्रचलन से हटा देंगे किन्तु अच्छे, खराब सिक्कों को प्रचलन में से कभी नहीं हटा सकेगें" इस की व्याख्या के कुछ अंश इस प्रकार हैं——सिक्के का सब से आवश्यक स्वरुप यह है कि उसका प्रचलन हो सके–एक के पाससे दूसरे के पास जासकें । जब कोई मनुष्य कोई वस्तु अपने पास से जुदा करना चाहता है तो. जब उस विनियम में उस से अधिक मूल्य की वस्तु प्राप्त हो जाती है तब कहीं वह उससे कम मूल्य की वस्तु देता है । आधुनिक बैंकिंग प्रणालियों का विकास होने से पूर्व लोग लोहे की सन्दूकों में सिक्के इकठ्ठ करके रखते थे और इस के लिये वे सब से नये और भारी वजन के सिक्के छांट कर रखते थे । विज्ञान का प्रचार हो जाने पर भी बहुत से मनुष्य अब भी जब कि उनके पास कोई सिक्का आता है तो यद्यपि उन से कोई लाभ नहीं उठाते तथापि यही लालसा रहती है कि उन्हें वही सिक्का मिले जो .हाल

ही टकसाल में बन कर आया हो—सराफ आदि जो सिक्को या ईटों को बाहर भेजते थे उन्हें सिक्को की कमी को पूरा करना पड़ता था क्योंकि अंतरराष्ट्रीय व्यापारमें सिक्के सदैव तोलकर भेजे जातेहैं नकि गिन कर। तीसरी बात धोखे बाजी की थी। जब कि बहुत थोड़ा अवसर परीक्षा के लिये दिया जाता था। थोड़ासा मुनाफा अपने लिये लेकर नये सिक्के प्रचलन के सिक्कों के मूल्य के बराबर कर दीये जाते थे। यहीं तब ग्रेपम के सिद्धान्त का प्रयोग उसके साधारण रुप में होता हैं। भारी सिक्के देश में से नहीं प्रत्युत प्रचलन में गायब हो जाते हैं, कुछ का निर्यात हो जाता है और कुछ गला डाले जाते हैं, शेष जमा रख लिये जाते हैं, कुछ का वजन चालाकी से कम कर दिया जाता है अर्थात् खराब सिक्का अच्छे सिक्के को प्रचलन से हटा देता है। इसी प्रकार दूसरे सिद्धान्तों को भी बड़े सरल शब्दों में व्यक्त किया है। आगे पांचवे छटे व सातवे प्रकरणों में भारतीय सिक्कों का इतिहास, भारत में सोने चांदी और तांबे आदि के सिक्कों का वर्तमान प्रचलन तथा भारतीय मुदा पर महायुद्ध का जो प्रभाव पड़ा है उन्हे क्रमानुकूल बड़ी ही अकाढय युक्तियों से शुद्ध भाषा मे व्यक किया है और साथ साथ आवश्यकतानुसार कई उपयोगी नकशे लगा कर पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है। ऐसी पुस्तक हिन्दी भाषा में मेरे कम देखने में आई है, मुझे पुर्ण आशा है कि हिन्दी भाषा के प्रेमी और विशेष कर साहूकारी की व्यावहारिक शिक्षा के जिज्ञासु इस से अवश्य लाभ उठावेंगे।

शिवप्रसाद मोदी ए. सी. आर. ए.
ओडीटर आफ़एकौन्टस धौलपुर स्टेट,
धौलपुर।

एक शब्द ।

पण्डित गौरीशंकर शुक्ल—सम्पादक धर्माभ्युदय, ने 'करन्सी' नामक पुस्तक लिख कर हिन्दी संसार का बड़ा उपकार किया है। पुस्तक अपने ढंग की नई है। इस विषय की ऐसी उपयोगी पुस्तक अभी तक देखने में नहीं आई है। सुयोग्य लेखक ने सिक्का चलन विषय की जटिल समस्या की उलझन अच्छी तरह सुलझाई है, हुण्डियों के लेन देन और भुगतान के विषय को भी भली भांति समझाया है—फलतः व्यापार विषय की अनेक बातें लिखी हैं जिन के जानने से व्यापारियों को अत्यन्त लाभ हो सकता है। मैं आशा करता हूं कि हिन्दी संसार मे विशेषतः व्यापार शिक्षा प्रेमियों में इस पुस्तक का अच्छा आदर होगा।

कन्नोमल एम० ए०

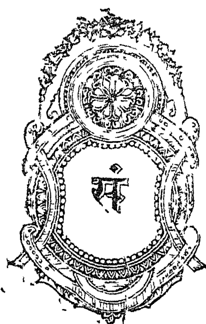


Banking & Currency.

बैंकिंग और करन्सी।

पहला प्रकरण

धन के विविध कार्य तथा गुण।



सार में ऐसी एक ही पाठशाला है, जहां पर बैंकिंग अर्थात् महाजनी की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, और वह पाठशाला है—बैंक।

इस व्यावहारिक शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थी को पुस्तकों द्वारा भी इस विषय का अध्ययन करना चाहिये; क्योंकि इस श्रेणी के पुरुषों को दोनों प्रकार से शिक्षित होना अत्यावश्यक है। कि[illegible] यदि कोई मनुष्य व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने की इच[illegible] किसी बैंक में प्रवेश करे, और वहां अपना अधिकांश [illegible] प्रतीत करदे तो भी वह वहां कुछ नहीं सीख सक[illegible] यत्त है कि जब तक वह महाजनों से कार्य का[illegible] कार्य कुशलता, कार्य की आन्तरिक पेचीद-

मियां, बैंक-व्यापार तथा अन्य ऐसी ही आवश्यक बातों का पूरा २ रहस्य न समझले तब तक वह बैंक से कोई लाभ नहीं उठा सकता। केवल लेखक या क्लर्क बन जाने से ही बैंकिंग जैसा जटिल विषय परिज्ञात नहीं हो जाता। यदि वह कार्य सीखता जाय और साथ ही तद्विषयक पुस्तकों का अवलोकन भी करता जाय तो निःसन्देह वह कार्य कुशल होगा; वह सच्चा साहूकार होगा। पुस्तकें उसके अनुभव को परिपक्व कर देती है। हम यह बात स्वीकार करते है कि इस कार्य मे व्यावहारिक शिक्षा ही मुख्य है तथापि यह भी स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस विषय के महत्व पूर्ण सिद्धान्त और विचार केवल पुस्तकों द्वारा ही सीखे जा सकते है; जहां पर कि व्यावहारिक शिक्षा कोसो दूर है।

कौन जानता था कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्र वेत्ता डाक्टर ग्रेशम का सिद्धान्त करन्सी पर इतना लागू होगा। क्या ऐसे व्यक्ति धन्यवाद के पात्र नहीं हैं? क्या उनके सिद्धान्त श्लाघनीय नहीं हैं? ये सिद्धान्त क्या बिना मस्तिष्क लड़ाए ही आगये थे?

इतना हम इसलिये कह रहे हैं कि बहुधा लोग इस श्रेणी के पुरुषों को हेय दृष्टि से देखा करते हैं। उनका कथन है कि: "एक रत्ती व्यावहारिक ज्ञान एक सेर पुस्तकीय व काल्पनिक ज्ञान से भी ज़ियादा है।" हम यह अवश्य मानते हैं कि व्यावहारिक ज्ञान का महत्व बहुत बड़ा है; तथापि इस अतिशयोक्ति पूर्ण नीति को हम स्वीकार नहीं कर सकते। इसका कारण भी हम

ऊपर लिख आये हैं। अब इस विचार के मनुष्य बहुत थोड़े रह गये हैं, और जो हैं, उनमें भी परिवर्तन होता जाता है। तात्पर्य यही कि यह एक शास्त्र है, और इसका ज्ञान् बिना नूतन वैज्ञानिक सिद्धान्तों के हो नहीं सकता।

बैंकिंग या महाजनी धन सम्बन्धी व्यापार है, जिस में व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करना आवश्यक है। इसके बिना कार्य नहीं चल सकता। व्यावहारिक ज्ञान बैंकिंग के लिये अमूल्य रत्न है परन्तु बिना सिद्धान्त जाने वह अधूरा है। जिसने इन दोनों को सीखा है, वही सच्चा बैंकर अर्थात् कार्य कुशल महाजन है। बिना व्यावहारिक ज्ञान के पुस्तकीय काल्पनिक सिद्धान्त भी किसी काम के नहीं। अस्तु; इतना निवेदन कर हम अपने मुख्य विषय की ओर झुकते हैं। सब से पहले यह विचारणीय है कि करन्सी क्या वस्तु है?

इस विषय के बड़े २ विद्वानों ने इसकी परिभाषा करते समय कागजी रुपया अर्थात् पेपर मनी (Paper Money) को इससे अलग रखा है। पर वे बैंक के प्रामिसरी नोटों को करन्सी में शामिल कर लेते हैं। इंग्लैंड बैंक के नोट तथा दूसरे प्रकार के कागजी रुपये को एक ही सा समझ लेने में बहुतों ने भूल की है। और इसी से करन्सी शब्द बहुधा प्रचलन-माध्यम (Circulating medium) के उस भाग को जो कि नियमानुकूल टेंडर है, व्यक्त करने में उपयोग किया जाता है। जिन विद्वानों ने बैंक के नोटों को नियमानुकूल टेंडर कह कर सम्मिलित किया

है उनने भूल की है। ये लोग बिल आफ़ एक्सचेन्ज अर्थात् दर्शनी हुन्डी को करन्सी से अलग कर देते हैं। यह करन्सी की परिभाषा का अर्थ-प्रमाद है। प्रचलन-द्रव्य अर्थात् हुन्डीयावन नियमानुकूल टेंडर है।

इन धन सम्बन्धी प्रश्नों पर बड़े २ विद्वानों ने विचार किया है, पर उनका अच्छी तरह हल होना अभी भविष्य के गर्भ में है। ये प्रश्न धन का मूल्य से सम्बन्ध और सिक्के का एक निश्चित परिमाण होना आदि हैं।

यह हम जानते हैं कि सोने चांदी के द्रव्य में और इस कागज़ी द्रव्य में कोई अन्तर नहीं है। यही नहीं, धातुओं के सिक्कों के साथ २ इनका भी चलन है। इसलिये करन्सी शब्द उन सभी प्रचलन-द्रव्यों को प्रकट करता है, जिन से ऋण चुकाया जा सकता है और क़ीमत का माप हो सकता है। सिक्के की यह बहुत बड़ी परिभाषा है और इस प्रकार इसके दो विभाग हो गये हैं:—

१ धातुओं के सिक्के जैसे रुपया, अठन्नी, पौंड आदि।

२ कागज़ी सिक्के जैसे हुंडी, नोट, चेक आदि।

रुपये पैसे का एक निश्चित नियम सन्तोष जनक रूप में होने के लिये अनेकानेक अर्थशास्त्रियों ने बहुत कुछ विचार किया है। अनुभव से यह बात सिद्ध होगई है कि करन्सी के सिक्कों में घटती बढ़ती करना जातीय ह्रास का चिन्ह है। यह एक बड़ी भूल है। इन्हीं भूलों के कारण करन्सी का परिमाण अभी तक अपने असली रूप को प्राप्त नहीं हो सका है।

इंग्लैंड में ब्लैक स्टोन के समय में जाली सिक्का बनाना राजद्रोह समझा जाता था और अंग्रेजी कानून ऐसे अपराधों पर बहुत कड़ी सजा देता था; यहां तक कि, सन् १८३२ तक ऐसे अपराधों की सजा मृत्यु थी। अस्तु,

सिक्कों के मुख्य तीन कार्य हैं:—

१—विनिमय का साधन।

२—मूल्य का परिमाण।

३—मूल्य का भिन्न २ भुगतानों के लिये एक परिमाण।

विनिमय अर्थात् अदल बदल करने का साधन हुए बिना जाति नीचे गिर जायगी और इस अवस्था में वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु बदलने की प्रथा का उपयोग करने लगेगी। संसार के सभ्य देशों में यह प्रथा किसी समय प्रचलित थी। उस समय भुगतान करने की रीति भी बड़ी भद्दी थी। इंग्लैंड जैसे देश में भी मध्य काल में धन की बड़ी कमी थी या दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उस समय इंग्लेंड में सिक्का न था। यदि था भी तो वह यथेष्ट न था।

उस समय के इंग्लेंड निवासी यह नहीं जानते थे कि उन का देश समय पा कर ऐसा समृद्धि शाली होगा। आज इंग्लेंड सम्पति का लीला स्थल बन रहा है। पर उस समय वहां बड़े २ नगरों में द्रव्य बहुत कम मिलता था तब ग्रामो के विषय में कहना ही क्या है? गांव के लोग नौकरी चाकरी कर माल खरीदते थे

अर्थात् द्रव्य का परिमाण दिन पर रख दिया गया था। यदि सौ रुपये का माल खरीदना होता तो २०।२५ या इसी प्रकार कुछ दिन उसे नौकरी करनी पड़ती। जब नौकरी वेतन से अधिक होती तो वह कृतज्ञता अथवा दया में शुमार करली जाती। बेचारे नौकर वैसे ही पेट बांध कर चले आते थे। इस प्रकार लोग बहुत दुःखी होगये थे। कारण यही है कि उस समय विनिमय का कोई साधन न था। इंग्लैड की इस हालत ने और सन् १८३१ के ऐक्ट ने भुगतान के नियम को और भी असुविधाजनक बनाकर व्यापार को चौपट कर दिया था। व्यापार की उन्नति में भुगतान का महत्वपूर्ण भाग है। अतएव विनिमय का कोई निश्चत साधन न होने से उन्हें जो दुःख झेलने पड़ते थे वे अवर्ण्य हैं।

सिक्कों का दूसरा काम मूल्य का परिमाण निश्चित करना है। मूल्य तथा गुण दो भिन्न विचारों पर स्थित हैं। मूल्य स्वतः कुछ नहीं है वह केवल एक वस्तु से दूसरी वस्तु के सम्बन्ध का एक परिमाण है। वस्तु का गुण उसकी शक्ति है। मूल्य और कुछ नहीं केवल विनिमय तथा हुंडियावन का एक साधन मात्र है। साधारण शब्दों में कह सकते हैं कि क़ीमत वही है जिस से विनमय या अदल बदल हो सके और विनिमय के साधन से पूरा २ परिमाण नियत किया जा सकता है और वह संख्या में प्रकट किया जा सकता है। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि सोने और चांदी की एक २ ईंट का मूल्य क्रमशः से

३५ और एक के अनुपात से है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि एक औंस सोने की क़ीमत ३५ औंस चांदी की क़ीमत के बराबर है अर्थात् एक औंस सोने से ३५ औंस चांदी ख़रीदी जा सकती है। इस प्रकार एक वस्तु की क़ीमत दूसरी से बताई जा सकती है। पर यह तभी हो सकता है जब एक ऐसी वस्तु हो जो सबको नाप सके। एक किसान वस्तुओं का मूल्य मक्का से, जो उसके खेत में पैदा हुई है; दूसरा नमक से; तीसरा कपड़े से; चौथा रोटी से निर्धारित कर सकता है और विनिमय का कार्य इन्हीं में से किसी एक से लिया जा सकता है, पर इससे बहुधा गड़बड़ पैदा हो जाती है। कभी ठीक २ परिमाण नहीं किया जा सकता। मोल का समान माप करने वाला सिक्का है और यह मोल जब सिक्कों में कहा जाता है तो क़ीमत कहलाती है सोने का मूल्य चांदी से ५ और १ रुपये के अनुपात से है। लेकिन चांदी की क़ीमत २ शिलिंग ३ पेंस प्रति औंस है। यह एक गलती है जब कि लोग कहते हैं कि गेहूं का मोल ३० शिलिंग प्रति क्वार्टर है; क्योंकि ३० शिलिंग एक क्वार्टर गेहूं के सिक्के के रूप में मोल को प्रकट करता है, इसलिये क़ीमत है।

द्रव्य का ज्यों २ विकास होता गया त्यों २ तीसरा प्रयोग कार्य में आने लगा और उसी प्रकार उसकी महत्ता भी बढ़ती गई। जब स्थायी गवर्नमेन्ट हो गई और व्यापार तथा उद्योग की उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी तब मनुष्य नियमानुसार कार्य करने लगे। वे जब इस प्रकार कहने लगे कि यह रुपया आगे की मिती

में जमा होगा और यह लो, उस वायदे की चिट्ठी, तभी मोल का परिमाण निश्चित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। जब इस प्रकार रुपये पैसे के वायदे होने लगे तो वायदा करने वाले नियत तिथि के भीतर शर्तों के पूरी करने का ध्यान रखने लगे। यदि एक मनुष्य ने एक हजार रुपया बीस साल के वायदे पर लिया है तो उस के लिये कितनी चिन्ता जनक बात होगी जब रुपये का मोल चीजों के लिये, बीस साल के अन्त में उधार के असली धन से तिगुना हो जाय। इसीलिये सिक्का कीमत का परिमाण निश्चित करता है जिससे जहां तक हो मूल्य स्थिर रहे। अर्थात् उसके मूल्य में दूसरी वस्तुओं के प्रति प्रायः उतना ही परिवर्तन हो जितना होने योग्य हो।

सिक्कों के इन तीनों कामों को ध्यान में रखते हुये हम उन गुणों को जानने का प्रयत्न करेंगे जो सिक्कों में होने आवश्यक हैं।

श्रीयुत जोवेन्स साहब सिक्कों में निम्न लिखित गुण होना आवश्यक समझते हैं :—

(१) धातु का मूल्यवान होना।

(२) एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा सके।

(३) अनाशवान्।

(४) समजातिक अर्थात् सर्वत्र समान।

(५) अलग २ विभाग किये जा सकें।

(६) स्थिर मूल्य।

✗ (७) प्रत्यक्षता अर्थात् देखते ही जाना जा सके।

सिक्के में विनिमय साधन के लिये चौथा, पाँचवा और सातवां गुण होना बहुत ही आवश्यक है।

अब यह एक प्रश्न है कि सिक्का किस धातु का बनाया जाय? जो वस्तु मूल्य में भिन्नता और माप मे अन्तर रखती है उसका सिक्का नहीं बनाया जा सकता। वह वस्तु सिक्के के लिये अयोग्य है। वस्तु के विभाग मे भी गुण होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये कीमती पत्थर बहु मूल्य समझा जाता है पर टुकड़े होजाने पर उनका मूल्य घट जाता है। एक हीरे के चार टुकड़े कर डालो, उसका वही मूल्य न होगा जो असली हीरे का था।

इसके अतिरिक्त विनिमय साध्य होने के लिये सिक्के में सातवां गुण होना आवश्यक है। उसके निरीक्षण के लिये जानकारों की आवश्यकता न पड़े। सिक्के के मोल का पूरा २ माप होने के लिये उस में पहिला गुण चाहिये। उस वस्तु का सिक्का बनाया जाय जो सिक्के के मूल्य के अतिरिक्त अपना भी कुछ मूल्य रखती हो। पर, विचार करने पर, इस नियम में परिवर्तन भी मालूम होता है। उदाहरण के लिये पश्चिम अफरीका की कौड़ियों को लीजिये। वे गहनों के रूपमें अवश्य कुछ मूल्य रखती हैं परन्तु कौडी रूप में वे इतनी उपयोगी नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि सिक्का मूल्य विरहित धातु का बनाया जाय और

फिर भी सिक्के के रूप में मूल्य रखे। तातार लोग सोने चांदी की अपेक्षा चमड़ा, कागज़ आदि काम में लाते थे। यह कोई नई बात नहीं है। भारत में भी ऐसे सिक्कों का प्रचलन हुआ था।

इधर लन्दन के बैंक आफ इंग्लेंड के बहुत से कागज़ के नोट प्रचलन में हैं, जिनका मूल्य कागज़ के रूप में कुछ भी नहीं है। परन्तु उनका मूल्य निश्चित किये हुए सिक्कों के साथ विनिमय का है। नोट के लिये सोने की मांग चाहे स्थिर हो जाय; परन्तु नोट के मूल्य में कोई परिवर्तन न होगा।

सिक्के का मूल्य स्थिर रखना भी आवश्यक है; पर सिक्कों में यह गुण होना दुस्तर है।

सभी देशों में, सब समय में किसी दर्जे तक सिक्कों के लिये सोने चांदी की मांग होती रही है; क्योंकि तांबा, कांसा और निकल की अपेक्षा उनमें सिक्कों में होने योग्य अधिकांश गुण हैं।

हमारे देश में तो एकन्नी से लेकर अठन्नी तक निकल की बन चुकी है। रुपया अभी नहीं बना है। हम आगे किसी प्रकरण में बतायेंगे कि इंग्लैंड सरकार ने जब चांदी का सिक्का जारी करने की इच्छा की और सोने के सिक्के का मूल्य घटाना चाहा तो वहां की जनता ने किस प्रकार विरोध किया। सोने और चांदी दोनों के मूल्य में अन्तर है। ये दोनों अपने २ गुण में भिन्न हैं; वस्तुओं की क़ीमत के लिये वे अपने से भिन्न हैं और विदेश भेजने के लिये बोझा हैं।



दूसरा प्रकरण

द्रव्य का मूल्य ।



किसी वस्तु का मूल्य द्रव्य के रूप में उसकी क़ीमत या दाम है। कीमत रुपये पैसे के रूप में वस्तु का मूल्य प्रकट करती है। हम प्रायः सभी वस्तुओं को नाप या तौल सकते हैं और उनके मूल्य के अनुसार उनकी क़ीमत या दाम लगा सकते हैं। परन्तु द्रव्य के लिये हमें कठिनाई उपस्थित होती है क्योंकि वह तो स्वयं ही मूल्य का उपमान और नाप है, और उसका कोई ऐसा साधन नहीं है जिनके द्वारा उसकी भी कीमत लगाई जा सके। द्रव्य का मूल्य अन्य सब वस्तुओं की असाधारण समानता से स्थिर किया जाता है। हमारे पाठक इस बात से कि एक का मोल किसी दूसरे से सम्बन्ध प्रकट करता है, विशेष उलझन में न पड़ जाने का ध्यान रखें गे। समस्त वस्तुओं का मूल्य उनके द्रव्य के साथ सम्बन्ध से स्थिर किया जाता है। जितनी ही ज़्यादा उनकी क़ीमत होगी उतना ही अधिक उनका मोल होगा। परन्तु द्रव्य का द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिये द्रव्य और सावरिन आदि का मूल्य दूसरी वस्तुओं के सम्बन्ध से स्थिर किया जाता है। जितनी ही ज़ियादा वस्तुओं की क़ीमत होगी उतनी ही अधिक कीमत

साबरिन आदि की होगी। द्रव्य का मूल्य उसकी मोल लेने की शक्ति द्वारा प्रकट किया जाता है। क़ीमतें बढ़ जाती हैं; क्योंकि द्रव्य की मोल लेने की शक्ति घट जाती है; क़ीमतें कम होने पर उसकी अपेक्षा उतने द्रव्य से बहुत सी वस्तुएं खरीद सकते हैं।

अतएव, द्रव्य का मूल्य और वस्तुओं का मूल्य एक दूसरे से भिन्न और उनमें से प्रत्येक परिमाण के लिये एक दूसरे का माप है। यदि एक चढ़ता है तो दूसरा गिरता है, और इसी प्रकार दूसरा गिरता है तो पहला चढ़ता है।

जब हम 'सोनेकी टकसाली क़ीमत' शब्द का उपयोग करें तो विशेष सावधानी रखनी चाहिये अन्यथा क़ीमत शब्द स्वर्ण के विषय में बड़े धोखे में डाल देगा। सोने की टकसाली क़ीमत वह क़ीमत है जिसे टकसाल सोने की ईंट बनाने के लिये देती है। धातु की क़ीमत सिक्के के रूप में टकसाली क़ीमत कहते हैं।

इंगलैंड में सोने की मिन्ट (टकसाली) क़ीमत ३ पौंड १७ शिलिंग १०॥ पैंस प्रति औंस है। अर्थात् एक औंस सोने से ३.८९ सावरिन बनते हैं। दूसरे शब्दों में एक सावरिन में सोने का वज़न १२३·२७४४७ ग्रेन होता है।

अपने विषय पर पुनः विचार करते हुए हम कह सकते हैं द्रव्य के मूल्य निर्धारण के भिन्न २ कारण हैं, जो एक दूसरे के प्रति अपना कार्य्य करते हैं। एक और तो बेंचने लायक माल को जुटाने में बहुत से कारण हैं,

और दूसरी ओर हमें द्रव्य की तादाद और उसकी मित-व्ययता का विचार करना पड़ता है।

उपर्युक्त विषय एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। स्वभावतः सब लोगों में सस्तेपन का भाव भरा रहता है। मानलो भाव सस्ता ही हो गया और मनुष्यों के विशेष ज्ञान तथा अनुसंधानों द्वारा सस्तेपन का कार्य परिश्रम की बचत होकर होने लगा। अब यदि द्रव्य की तादाद उतनी ही बनी रहे और व्यवहार में वैसा ही मितव्यता बनी रहे तो हम क़ीमत में सर्वत्र कमी पायेंगे दूसरे शब्दो में द्रव्य की मोल लेने की शक्ति बढ़ जायगी। अब हम दूसरी ओर से भी इसका विचार करेंगे। मानलो कि वस्तुओ की क़ीमत वैसी ही बनी रही। पर, द्रव्य की तादाद में कमी है। उदाहरणार्थ सोने की खान से सोना निकलना बंद हो गया साथ ही यह भी मान लें कि द्रव्य के मितव्यय होने मे भी कोई परिवर्तन न हुआ तो क़ीमत पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। द्रव्य-पूर्ति और मांग का असर द्रव्य पर पड़ता है और उसकी क़ीमत पूर्ति कम होने से बढ़ जाती है। ये दो प्रधान कारण हैं जिनसे द्रव्य का मूल्य स्थिर करने में कठिनता उपस्थित होती है।

पहले प्रकरण में हम बता चुके हैं कि स्थिरता द्रव्यके मूल्य का बड़ा आवश्यकीय गुण है और उसमें जो त्रुटियां है उन्हें दूर कर देना चाहिये। क़ीमत यदि बढ़ जाय तो कमाने वालों

को उस समय तक के लिये बड़ा लाभ हो । पर यह लाभ और कुछ नहीं उपयोग करने वालों का व्यय है । क़ीमत हमेशा ही नहीं बढ़ती रहती है ।

यदि कृत्रिम नियमानुसार द्रव्य की पूर्ति रहे और उपयोग में मित-व्ययता हो तो भी हमारा उद्देश्य सफल न होगा; क्योंकि द्रव्य के मूल्य पर दूसरी ओर बताये हुये कारणों का प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। हम कुछ समय के लिये किसी प्रकार यह मानलेते हैं द्रव्य का मूल्य उसकी पूर्ति और उपयोग में एक दम स्वतन्त्र है । साधारण नियमानुसार यह मूल्य द्रव्य की तादाद, जो कि प्रचलन में हैं, और उसके परिमित उपयोग पर निर्भर है । अर्थात् उसके प्रचलन में अधिकता है । जितने अधिक परिमाण में द्रव्य प्रचलन होगा उतना ही न्यून उसका मूल्य होगा और साधारणतया क़ीमत में बढ़ती होगी । यों ही दूसरी तरह भी जानो ।

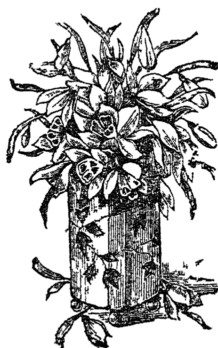
द्रव्य के प्रत्येक अंश से जितना अधिक कार्य लिया जायगा उतना ही उसका मोल घटेगा साथ ही बढ़ती का दर्जा भी ऊंचा ही रहेगा । जानस्टुअर्ट मिल के शब्दों में चीजों की तादाद और सौदे एक ही हों तो ज्यों २ उसके परिमाण और प्रचलन में अधिकता होगी उसी प्रकार उसका मूल्य भी विपरीत होगा। यहां पर हम अपने पाठकों को बतला देना चाहते हैं कि द्रव्य का परिमाण केवल खानों से बहुमूल्य धातुओं की पूर्ति पर ही अवलम्बित नहीं है । व्यापार-प्रधान देशों में द्रव्य की

अधिक से अधिक तादाद कागज़ी द्रव्य की होती है। द्रव्य कागज़ के रूप में होता है। उसकी यह शर्त होती है कि उससे चाहे जब अथवा नियत समय पर सोना चांदी मिल सकता है। यह शर्त कदाचित् ही कभी भंग होती होगी। क़ीमती धातुओं की इतनी कमी है कि जिससे किसी समय भी शर्त तोड़ी जा सकती है। पर होता क्या है कि बहुत से सौदों का रुपया एक दूसरे के परिवर्तन में ही अदा हो जाता है।

कागज़ी द्रव्य की साख धातु के प्रचलन-परिमाण पर अवलम्बित है। यह ऊपरी साख कागजी द्रव्य से पूरी की जाती है; जो कि एक नियम बद्ध पद्धति है तथा जो मांग के अनुसार घटती बढ़ती है। इसका यह गुण अधिक लाभदायक है और यही गुण सिक्के के मूल्य में स्थिरता रखता है। अन्यथा न जाने सिक्के के मूल्य की क्या दशा होती? और व्यापार की दशा और हलचल में कैसी कठिन समस्या उपस्थित हो जाती?

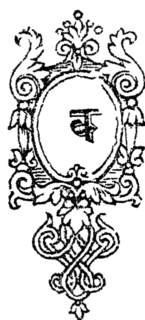
यह घटने बढ़ने की शक्ति साधारण नियमों द्वारा सिक्के को निकाल कर प्रचलन में बढ़ाने की है। ज्यों ही देखे कि प्रचलन में धातु के सिक्के अधिक परिमाण में आ गये हैं त्योंही कागजी सिक्कों को खींचकर आवश्यक परिमाण में कर लेना योग्य है। इन सिक्कों का यही गुण ध्यान में रखने योग्य है। किसी किसी अवसर पर व्यापार बढ़ जाता है; सौदे बढ़ते हैं और देश के द्रव्य का कार्य बढ़ जाता है। उस समय करन्सी (सिक्कों) की तादाद में बढ़ती की आवश्यकता होती है; और वह पूर्ति

इस प्रकार होती है, जिसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। यदि कोई सरकार अपने यहां कागजी सिक्के का प्रचलन बंद करदे और यदि उसके राज्य के बाहर उसका उपयोग अधिकता से हो तो उस सरकार की क्या दशा होगी? ज्यो २ धातुओ के सिक्के ढालकर प्रचलन मे लाये जायेंगे त्यो २ वे गायब होते जायेगे यहा तक कि, खजाना खाली हो जायगा और धातु भी अवशिष्ट न रहेगी। कागजी द्रव्य से बड़ी सुलभता रहती है। कागजी द्रव्य का प्रचलन रबर की तरह स्थिति स्थापक गुण वाला है। जिस प्रकार रबर को हम इच्छानुसार छोटा बड़ा कर सकते है उसी प्रकार कागजी सिक्के की भी यही दशा है। कागजी द्रव्य की व्यापार मे बड़ी आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना कार्य चल नहीं सकता। इतनी धातु नहीं है जिससे संसार भर की माग पूरी की जा सके।



तृतीय प्रकरण

ग्रेषम का सिद्धान्त ।



बड़े २ सभ्य देशों के सिक्कों का इतिहास प्रगट करता है कि वे सिक्कों को ठीक रूप में रखने में असफल हुए हैं । इन असफलताओं का कारण भ्रम पूर्ण सिद्धान्तों का नियमन और कठोर नियमों का परिपालन था । हमारे ही देश मे समय समय पर नये नये सिक्के निकाले गये जो शीघ्र ही प्रचलन मे से गायब हो गये । इस का कारण यह था कि प्रचलन के सिक्के पुराने थे, बुरी शक्ल के थे साथ ही असम थे उन की तौल एक नहीं थी जिस से बड़ी गड़बड़ पड़ती थी । परिणाम यह होता था कि समाज के लोगों को बहुत हानि उठानी पड़ती थी । और होशियार व चालाक आदमी उस से हाथो हाथ फायदा उठाते थे ।

इन सिद्धान्तों में से जो सब से उत्तम है साथ ही जिस की सब से अधिक अपेक्षा की जाती है वह ग्रेषम का सिद्धान्त है । यह सिद्धान्त वास्तव में एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है न कि राज-नैतिक । वैज्ञानिक नियम सार्वभौम तात्पर्य्य को प्रगट करता है और अनुभव से सिद्ध होता है कि उस की कुछ शर्तें व्यवहार

में लाई जा सक्ती हैं और जो प्रयोग द्वारा सिद्ध भी हो चुकी हैं। राजनैतिक नियम यह प्रगट करता है कि अमुक घटनायें अवश्य होनी चाहियें; एक वैज्ञानिक सिद्धान्त यह प्रगट करता है कि इन दशाओं में अमुक घटना अवश्य होती है। ग्रेषम का सिद्धान्त महारानी एलीज़ाबेथ के एक नाइट के नाम से प्रसिद्ध है, यह शाही एक्सचेन्ज का संस्थापक था और ऐसा ख्याल किया जाताहै कि इसे क़ानून के रूप में लाने के लिये शाही आज्ञा प्राप्त हुई थी। यद्यपि वह एलिज़ाबेथ के राज्यकाल में ही प्रकाशित होगया था तथापि उसके बाद बहुत दिनों तक सर्व मान्य न हुआ। उसका प्रारम्भिक और सबसे सरल रूप इस प्रकार प्रगट किया जासक्ताहै:-

"यदि एक ही धातु के सिक्के जो तौल और रूपमें भिन्न प्रकार के हों एक साथ एक ही मूल्य में प्रचलित किये जायं तो ख़राब सिक्के अच्छे सिक्कों को प्रचलन से हटा देंगे किन्तु अच्छे ख़राब सिक्कों को प्रचलन में से कभी नहीं हटा सकेंगे।"

कानून बनाने वाले यह बात नहीं समझ सके कि पूरी तौल के सिक्कों की अपेक्षा हलकी तौलके सिक्के क्यों पसन्द किये जायेंगे, और जब पूरी तौल के नये सिक्के जारी किये गये तो प्रचलन गत् ख़राब सिक्कों को इन नये सिक्कों द्वारा हटा देने की जो आशा की गई थी उस पर सदा की तरह उन्हें निराश होना पड़ा। जरा विचार पूर्वक देखने से यह बात प्रगट होगी कि इस सिद्धान्त का कार्य मानवी प्रकृति के प्रारम्भिक कार्यों की तरह है। सिक्के का सब से

आवश्यक स्वरूप यह है कि उसका प्रचलन हो सके, एक के पास से दूसरे के पास जा सके। जब कोई मनुष्य कोई वस्तु अपने पास से जुदा करना चाहता है तो, जब उसे विनिमय में उस से अधिक मूल्य की वस्तु प्राप्त हो जाती है तब कहीं वह उससे कम मूल्य की वस्तु देता है।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक आधुनिक बैंकिंग की प्रणालियों का विकास नहीं हुआथा तब तक लोग लोहे की संदूकों में सिक्के इकट्ठे करके रखते थे और इसके लिये वे सबसे नये और भारी वज़न के सिक्के छांट कर रखते थे। अब जब कि विज्ञान का प्रचार हो गया है बहुत से मनुष्य जब कि उन के पास कोई सिक्का आता है तो, यद्यपि वे उनसे कोई लाभ नहीं उठाते, तथापि उनकी यही लालसा रहती है कि उन्हें वही सिक्का मिले जो हाल ही में टकसाल से बनकर आया हो। उन दिनों में जब कि सिक्कों की दशा अतिशय विचारणीय थी और जब कि हलके सिक्कों का मिलना उसके पाने वाले को हानिकर था, लोगों में इस प्रकार के विचार बहुतायत से थे। फिर सराफ़ आदि जो सिक्कों या ईंटों को बाहर भेजते थे उन्हें सिक्कों की कमी को पूरा करना पड़ता था क्योंकि अंतराष्ट्रीय व्यापार में सिक्के सदैव तोलकर भेजे जाते हैं न कि गिनकर। तीसरी बात धोखे बाजी की थी, जबकि बहुत थोड़ा अवसर परीक्षा के लिये दिया जाता था; थोड़ा सा मुनाफ़ा अपने लिये लेकर नये सिक्के प्रचलन के सिक्कों के मूल्य के बराबर कर दिये जाते थे। यहीं

तब, ग्रेषम के सिद्धान्त का प्रयोग उसके साधरण रूप में होता है। भारी सिक्के देश में से नहीं प्रत्युत् प्रचलन में से गायब हो जाते हैं, कुछ का निर्यात हो जाता है और कुछ गला डाले जाते हैं, शेष जमाकर रख लिये जाते है, कुछ का वजन चालाकी मे कम कर दिया जाता है; अर्थात् खराब सिक्का अच्छे सिक्के को हटा देता है।

अब हम उन सिक्कों पर विचार करते हैं जिनमें दो बहुमूल्य धातुओं का उपयोग होता है और दोनों का प्रचलन परस्पर के निरधारित मूल्य द्वारा होता है यह निरधारण र.देव के लिये होता है या समय २ सरकार नियत करती है, और यहां हम उसी कानून के दूसरे रूप को प्रयोग में पाते है। ऐसी दशा में हम दो धातुओं को जो सोना और चांदी कही जा सकती हैं, उनके मूल्य—परिमाण में बहुधा भिन्न २ पायेंगे।

प्रथमतः ईंट के रूप में दोनों धातुओं में बाजार भाव के मूल्य का परिमाण है जो दिन प्रतिदिन बाजार की स्थिति के अनुसार किसी हद तक बदलता रहना है; और दूसरा सरकारी परिमाण है जिसके अनुसार दोनो धातुयें प्रचलन मे मानी जाती हैं। जब तक इन दोनों का परिमाण, सरकारी और बाजार का परिमाण, समान रहते है, तब तक ग्रेषम का क़ानून अप्रयुक्त है, किन्तु अनुभव प्रगट करता है कि इन दोनों प्रकार के परिमाणों को दीर्घ काल तक समान रखना यदि असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है।

ऐसा देखा जाता है कि जिन सिक्कों का मूल्य परिमाण से अधिक होता है वे परिमाण से कम मूल्य वाले सिक्के को प्रचलन में से हटा देते है। उदाहरण के लिये जापान के सिक्कों को लीजिये जब कि उस देश में पहले ही पहल युरोपीयनों का प्रभाव पड़ा था। उस समय सोने और चांदी के सिक्कों का मूल्य परिमाण पांच और एक के अनुपात से था, जो साधारणतः उस देश का बाजार भाव था। युरोपीयन व्यापारी को यह बात जानने में देर न लगी कि वह पांच औंस चांदी से एक औंस सोना मोल ले सक्ता था। और इतना ही सोना युरुप में पन्द्रह औंस चांदी के बराब्र था। फलतः जापान के सोने के सिक्के शीघ्रता पूर्वक प्रचलन से उठ गये।

अंग्रेजी इतिहास से दूसरा उदाहरण लीजिये जब एडवर्ड प्रथम के राज्य काल में इंगलैड मे पहले पहल अधिक परिमाण में सोने का सिक्का ढाला गया तब निश्चित मूल्य से कम होते ही वे प्रचलन से उठ गये। सोने के फ्लोरिन का प्रचलन मूल्य छः चांदी के शिलिंग के बराबर रखा गया। पर दोनों धातुओं के बाजार भाव के अनुसार एक फ्लोरिन का मूल्य सात शिलिंग था। सोने के फ्लोरिन को गलाकर सुनार को बेचने से सात शिलिंग प्राप्त हो सकते थे पर निश्चित मूल्य के अनुसार छः शिलिंग का ही ऋण चुकाया जा सक्ता था। फल यह हुआ कि लोगों ने चांदी के रूप में अपना ऋण चुकाया और सोने को इकट्ठा किया, गलाया अथवा बाहर भेज दिया, क्योंकि यह सरल उपाय था।

इस प्रकार हम ग्रेषम के कानून का दूसरा प्रयोग इन शब्दों में प्रगट कर सकते हैं :—

"यदि दो बहु मूल्य धातुओं के सिक्के प्रचलित किये जायं और परस्पर परिवर्तन का परिमाण निश्चित हो तो जिस धातु का मूल्य बढ़ जायगा वह कम मूल्य वाली धातु को प्रचलन से हटा देगी।"

इस उपयोगी सिद्धान्त का एक तीसरा रूप भी है जिसका प्रयोग धातु और कागज़ी सिक्कों के सम्बन्ध में होता है।

आधुनिक राष्ट्रों के इतिहास में सिक्का सम्बन्धी गड़बड़ का मुख्य कारण अति अधिक कागज़ी सिक्कों का प्रचार ही पाया जाता है। जब तक कागज़ी सिक्का आवश्यकता पड़ने पर धातु के सिक्कों के रूप में परिवार्तित किया जा सक्ता है तब तक उस का अधिक से अधिक प्रचलन ठीक किया जा सक्ता है। किन्तु जब ऐसा नहीं होता। तब उन्हें रोकने के लिये कठोर बन्धन की आवश्यकता होनी चाहिये। जब तक सीमा भङ्ग नहीं होती तब तक अपरिवर्तनशील सिक्का अपना मूल्य स्थिर रख सक्ता है, यदि सरकार की साख एक दम खराब न हो, किन्तु ज्यों ही प्रचलन अत्यधिक हो जाता है, त्यों ही सोना प्रचलन से हटने लगता है और कागज़ी सिक्के का मूल्य कम हो जाता है।

सिक्कों के अधिक परिमाण में प्रचलित होने का फल यह होता है कि सिक्कों का मूल्य तो घट जाता है पर वस्तु के मूल्य

में वृद्धि होती है। अन्य राष्ट्र सोना चांदी की अपेक्षा वस्तुके रूप में मूल्य देना सरल समझते हैं, और बढ़ते हुए सिक्के क्रमशः बाहर भेज दिये जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सिक्के धातु के ही होते हैं अथवा ईंटों के रूप में होते हैं, क्यों-कि दूसरे देश कागज़ क्यों लेने लगे। सिक्कों की बढ़ती हुई कमी से वे एकत्र किये जाते हैं और प्रचलन गत् बहुमूल्य धातु-ओं का स्टाक कम हो जाता है। फिर भी यदि कागज़ी सिक्का का बनाना प्रचलित रहे तो इस का परिणाम यह होगा कि सोने चांदी के सिक्कों और कागज़ी सिक्कों के मूल्य में परिवर्तन हो जायगा। सोना और चांदी भाव में बढ़ जायगा और नोट घट जायंगे। इस दशा में ऋण चुकाना सरल होगा और सोने और चांदी का अवशेष सर्वथा मिट जायगा। हम ग्रेषम के कानून के तीसरे रूप को इन शब्दों में प्रगट कर सके हैं:—

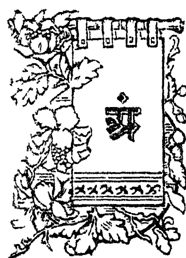
"यदि अपरिवर्तनशील कागज़ी सिक्का बहुतायत से प्रचलित किया जाय अर्थात् साधारण परिमाण से अधिक हो हो जाय तो वह बहुमूल्य धातुओं को प्रचलन से हटा देगा।"

ग्रेषम के सिद्धान्त के यही तीन रूप हैं। यह बतला देना आवश्यक है कि प्रारम्भ में इस का पहले पहल एक ही रूप था। सुविधा के लिये सिद्धान्त के आधार पर पीछे से यह तीन रूप बना लिये गये।



चौथा प्रकरण

अंग्रेजी सिक्का।



ग्रेजी सिक्का मिश्रितनियमबद्ध प्रणाली द्वारा नियमित है। किसी विशेष प्रकार का सिक्का उस समय नियमानुकूल कहा जा सकता है जबकि किसी कर्ज के अदा करने में वह स्वीकृत किया जा सके। सिक्का इस प्रकार सम्पूर्ण अथवा अपरिमितनियमबद्धटेंडर कहा जायगा यदि वह किसी अनिश्चित परिमाण में उपर्युक्त रीति द्वारा दिया जा सकता है। यदि कर्जदार को उसे स्वीकार करने की शक्ति मे कठिनाइयां उपस्थित हों तो वह सिक्का सीमितनियम बद्धटेंडर कहलायगा।

एक ही लीगलटेंडर के सिक्के होना द्रव्य की सबसे सरल प्रणाली है। पर इस सरलता से बढ़कर कई असाविधायें हैं। मान लीजिये यदि वह एक धातु सोने की तरह बहुमूल्य है तो, प्रतिदिन के व्यवहार के लिये उसके छोटे २ सिक्के बनाना बड़ा कठिन होगा। यदि वह एक धातु सस्ती है तो उसे अधिक संख्या में विदेश भेजने का व्यय तथा उसकी असुविधायें असहनीय हो जाती हैं। इस दशा में सरकार दो धातुओं के सिक्के बना सकती है और उनके प्रचलन का भाव बाजार में उस धातु के

भाव से भिन्न रख सकती है, जिसके कि वे बने है; पर यह कार्य व्यापार की वर्त्तमान आवश्यकता की पूर्ति नहीं करता।

यदि दोनों ही धातुएं अपरिमितनियमबद्धटेडर बनादी जायं और उनके प्रचलन का औसत भाव सरकार द्वारा स्थिर कर दिया जाय, तो ग्रेषम के सिद्धान्तानुसार दूसरे प्रकार में उन दोनो का प्रचलन कुछ काल के लिये भी अतीव कठिन हो जायगा।

इस कठिनता को दूर करने के लिये अंग्रेजी सरकार ने सन् १८१६ में मिश्रित नियमबद्ध-प्रणाली को ग्रहण किया। यह प्रणाली संसार के प्रायः समस्त सभ्य राष्ट्रों ने ग्रहण की है।

संयुक्त राष्ट्र में सोना अपरिमित लीगल टेंडर है अर्थात् कोई व्यक्ति किसी भी अनिश्चित संख्या तक सोने के सिक्के मे अपना ऋण चुका सकता है।

इंगलैंड बैंक के नोट भी स्वयं बैंक और उसकी शाखाओं के अतिरिक्त वहीं पूर्ण नियम बद्ध—टेडर हैं। चालीस शिलिङ्ग तक चांदी और एक शिलिंग तक कांसे का सिक्का पूर्ण नियम-बद्ध है उसके बाद वह परिमित है। सन् १९१४ में युरोपीय महायुद्ध के छिड़ने पर डाँकखाने के सार्टिफिकेट और १ पौंड १० शिलिङ्ग के खजाने के नोट भी नियमबद्ध सिक्के कर लिये गये। पर सन् १९१५ में डाँकखाने के सार्टीफिकेट उन सिक्कों मेसे अलग कर दिये गये।

ग्रेषम साहब के सिद्धान्तानुसार जो कठिनता उपस्थित होती है; उसे दूर करने के लिये एक और नियम बनाया गया जो अब

तक हमारे सिक्कों में अपना कार्य कर रहा है अर्थात् चांदी का मूल्य जो पहले पाँच शिलिङ्ग प्रति औंस था वही सिक्के के रूप में ५ शिलिङ्ग ६ पेंस प्रति औंस है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकतेहैं कि भविष्यमें ५ शिलिङ्ग ६ पेंस के सिक्के में ५ शिलिङ्ग चांदी हो। इसने चांदी के सिक्के को घटा कर 'टोकन' की श्रेणी में पहुँचा दिया। 'टोकन' उन सिक्कों को कहते हैं जिनका प्रचलन मूल्य अपनी असली धातु के मूल्य से अधिक हो।

जरा विचार करने पर ज्ञात हो जायगा कि इस प्रणाली ने सोने द्वारा चांदी का सिक्का प्रचलन से हटाने में बाधा पहुँचायी। कोई भी मनुष्य चांदी का सिक्का बाहर न भेज सकता और न गला ही सकता; क्योंकि ऐसा करने से उसे ६ पेंस प्रति औंस घाटा होगा, जबकि चांदी का बाजार भाव वही रहे जो पूर्व में था। इस प्रकार चांदी का भाव बढ़ गया। इस प्रथा से सोना प्रचलन से कम हो चला, पर ऐसा न होने देने के लिये सरकार ने चांदी के सिक्कों का ढालना अपने हाथ में रखा। सरकार उतने ही सिक्के ढालती जिससे प्रतिदिन के छोटे २ कामों की पूर्ति हो सकती थी अपने इस नियमित परिमाण से चांदी सोने को प्रचलन से न हटा सकी।

छोटे २ कामों की पूर्ति होती रहने के लिये निश्चित परिमाण में चांदी के सिक्के बनाये गये। अल्प संख्या में होने के कारण कोई व्यक्ति किसी बड़े क़र्ज़ में उसका उपयोग न कर सकता था। साहूकारों पर भी उसी प्रकार एक नियंत्रण रखा गया कि

वे ४० शिलिंग से अधिक न लें। इससे ज्यादा सिक्के लेकर उन्हें 'टोकन' रूप में न रखने देने के लिये यह नियम कर दिया कि उनका प्रचलन बाहर पूरी क़ीमत में न हो। और कोई ४० शिलिंग से ज़्यादा न दे। इसी प्रकार तांबे के सिक्कों पर भी १ शिलिंग तक का परिमाण रख दिया गया।

कोई भी व्यक्ति टकसाल में सोना देकर सिक्के बनवा सकता है, पर उनकी संख्या संतोषजनक होनी चाहिये। टकसाली सोने की कीमत ३ पौंड १७ शिलिंग १०$\frac{1}{2}$ पैंस प्रति औंस है। सिक्के बिना कुछ लिये ही ढालदिये जाते हैं। सन् १६६६ के क्वायनेज़ एक्ट (सिक्के का कानून) पास होने के पूर्व तक सरकार सिक्कों की ढलाई लेतीथी टकसाल वह केवल महसूल ही नहीं लेती प्रत्युत् बची हुई अन्य धातुओं को भी रख छोडती थी। इस प्रथा से सर्वसाधारण पर बुरा परिणाम हुआ। वे लोग सिक्का ढलवाने के लिये सोना न लाते और सरकार को कभी २ पुराने ग्राहकों से सिक्के के लिये नई धातु देने के लिये विवश हो कहना पडता था। सन् १६६६ से इंग्लैंड में बिना कुछ दिये ही सोने का सिक्का ढल सकता है। तथापि बहुत से राष्ट्रों ने कर लगा रखा है।

व्यवहार में सर्वसाधारण द्वारा सोने की ईंटें सीधी टकसाल बहुधा कम जाती हैं। इसलिये इंग्लैंड बैंक का नियम प्रजा और टकसाल के बीच में नियन्त्रण करता है और १$\frac{1}{2}$ पेंस का अत्यन्त साधारण करलेता है। बैंक अपने नियमानुसार वाध्य किया गया है कि सब सोना नियत मूल पर अर्थात् ३ पौंड १७ शिलिंग

९ पेंस प्रति औंस के भाव पर खरीदे। बैंक उसी समय सिक्के तैयार देती है। यदि यही सोना कारखाने में ले जाया जाय तो कितना समय उसके सिक्का बनाने में लगेगा।

अंग्रेजी सिक्के नियत स्वर्ण के बनाये जाते हैं, जिसमें १२ अँश असली सोना और एक अँश तांबा होता है। इस प्रकार यह नियत स्वर्ण $\frac{२२}{१२}$ शुद्ध अथवा २२ रत्ती शुद्ध होता है।

एक औंस सोने की ३ पौंड १७ शिलिंग १०$\frac{१}{२}$ पेंस टकसाली कीमत के हिसाब से एक सावरेन का वज़न १२३·७४४ ग्रेन ट्रॉय। किन्तु प्रारंभ में जब कि पहले ही पहल मशीन बनी थी, वज़न में अन्तर पडजाना सहज बात थी और यह अन्तर प्रत्येक सावरेन में $\frac{२}{१०}$ ग्रेन का होता था। अब भी टकसालों में सिक्के के वज़न में फ़र्क होता है पर अब नई २ मशीनों के आविष्कार से अब यह बहुत कम होता है। यह कहना चाहिये कि अब पूरी तौल के सिक्के ढाले जाते हैं। आधे सावरेन में $\frac{३}{१०}$ ग्रेन का अन्तर होता है। पर दो पौंड और पांच पौंड के टुकड़े पूरे २ वज़न के तयार हो जाते हैं। पौंड एक निश्चित सिक्का है। जब तक कि उसका वज़न १२२$\frac{१}{२}$ ग्रेन और आधे पौंड का ६१·१२५० ग्रेन से नीचे नहीं। यदि किसी व्यक्ति को ऐसे सिक्के जिनका वज़न ऊपर लिखे हुये वज़न से कम हो तो वह नियमानुसार उन्हें उस व्यक्ति को लौटा दे जिससे उसे प्राप्त हुये हैं।

ग्रेषम का सिद्धान्त वास्तव में अपना कार्य कर रहा था और सोने के सिक्के ऐसी बदतर हालत में हो गये थे कि जब सन् १८६९ में श्रीयुत् जेवेन्स साहबने हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि ३१$\frac{3}{7}$ प्रति सैकड़ा सावरेन और ५० प्रति सैकड़ा अर्ध सावरेन कम वज़न की प्रचलित थीं। सन् १८८४ में बैंकों ने इस आन्दोलन को उठाया और सरकार भी यथा संभव इस विषय पर कार्य करती रही। अन्त में सन् १८८९ में उस ने एक 'नवीन सिक्कों का एकट' पास किया जिस से राज्य के व्यय मे विक्टोरिया के पूर्व के सिक्के प्रचलन से उठा लिये गये। इस प्रकार के सिक्के इंगलैंड बैंक पूरे मूल्य में ले लेता था साथ ही राज्य की ओर से यह घोषणा कर दी गयी कि २८ फरवरी १८९१ के बाद विक्टोरिया के पूर्व के सोने के सिक्के अनियमित हो जायेंगे। सन् १८९१ में सब प्रकार के सिक्कों के लिये यह क़ानून करदिया गया। खोटे सिक्के ३ ग्रेन की हानि से बदले जाते थे।

इन दोनों नियमों ने प्राचीन धारणा को कि, ख़राब सिक्कों का नुकसान अन्तिम मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ेगा, स्पष्ट-प्रगट कर दिया। साधारण धारणा चाहे जैसी हो पर व्यवहार में यह बात असफल सिद्ध हुई राज्य ने इन नियमों को स्वीकृत कर सिक्कों के दुरुस्त करने का भार अपने ऊपर लिया। इसका प्रभाव करन्सी पर बहुत अच्छा पड़ा, और अब उसमें पुराने सिक्कों के प्रति असन्तोष होने का कोई क़ारण नहीं।

चांदी के सिक्कों की दशा का वर्णन वैसा महत्व पूर्ण नहीं है; क्योंकि इसके सिक्के 'टोकन' सिक्के के रूप में होते हैं, जो संयुक्त राज्य के बाहर नहीं जा सकते। फिर भी जितने मूल्य की चांदी उनमें होती है उसके अनुसार उनका मूल्य नहीं होता। फिर भी कुछ वर्ष हुये बहुत से चांदी के सिक्के खराब दशा में एकत्र हो गये थे। राज्य का उन्हें नये करने का कर्तव्य था और वह सोने के सिक्कों की अपेक्षा कहीं सरल था कारण यह था कि चांदी का भाव गिरने पर टकसाल को ऐसे सिक्कों को ले लेने में बड़ा लाभ हुआ। बाजार में चांदी का भाव प्रायः २ शिलिंग अथवा २ शि. ८ पेंस प्रति औंस होता है, और इस में ५६ शिलिंग के सिक्के तैयार होते हैं। टकसाल को उसका लाभ देते हुए भी सौ प्रति सैकड़ा का लाभ होता है। जिससे सरकार को सिक्कों को नये रूप में रखने और पुरानों की दुरुस्ती करने में किसी प्रकार की अड़चन नहीं होती। बीस बर्ष हुये कि टकसाल ने इंग्लैंड बैंक द्वारा सब बैंकों से निर्धारित करवा लिया कि वे चांदी के छोटे २ सिक्के पूरे मूल्य में ही लें। इस कार्य का असर संयुक्त राज्य में ऐसा अच्छा हुआ कि वहां के चांदी के सिक्कों की दशा बहुत कुछ सुधर गई।



में रुपये ढालना बन्द कर दिया गया उसी समय समीप भविष्य में सरकार सोनेका सिक्का, भारतीय सोनेका सिक्का, चलाने का विचार कर रही थी। यह सम्भवतः इस विचार से था कि गवर्मेन्ट के १८९३ के नोटिस से टकसालों में सोने का सिक्का या सिल, नोट और रुपयों के बदले में प्रति रुपया १ शि० ४ पें० के हिसाब से ली जाने लगेगी। साथही सरकारी रुपया चुकाने में अंग्रेजी पौंड और अर्द्ध पौंड भी उसी प्रकार लिये जायँगे। किन्तु चांदी का भाव गिर जाने से उस समय यह विचार कार्य रूप में परिणित न हो सका। सन् १८९२-९३ में एक्सचैञ्ज की औसत दर प्रति रुपया १ शि. ३ पें. थी। आगे दो वर्षोंमें भाव और भी गिरगया यहां तक कि १८९४-९५ में वह प्रति रुपया १ शि. १ पें. ही रह गया सन् १८९३के पूर्वतक जो रुपया ढलचुका था उसकी चलते सिक्केमें मांग बढ़ने लगी और सरकार उसे पूरी करने लगी। परन्तु जब सरकार ने और अधिक रुपया ढालना बंद कर दिया और बराबर ६ साल तक यही दशा रही तो रुपये की क़ीमत बढ़ गई, यहां तक कि सन् १८९९ में वह १ शि० ३·८ पेंस हो गई, अर्थात् सन् १८९३ के नोटिस के अनुसार सरकार जो भाव चाहतीथी उससे दो पेंस ही कम रहा। इसी समय फाउलर कमेटीने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और भारत में सोने का सिक्का चलानेकी सिफारिश की। वह इस प्रकार संक्षेप में है:—

भारत में सोने का सिक्का चलाया जाय और रुपया चिन्ह सिक्का रहे और उसका मूल्य १⁄१५ पौंड रहे। सर्व साधारण के लिये

सोने का सिक्का ढालने के लिये टकसालें खोल दी गईं। पर चांदी के लिये वे बंद ही रहीं, और रहनी ही चाहियें; क्योंकि रुपया प्रचलन सिक्का होने के कारण उससे बड़ा लाभ होता था और फलतः यह लाभ सरकार और उसके साथियों को ही मिलता था। चांदी का इस प्रकार स्वायत्तीकरण कर लेने से जो लाभ होता वह सोने के रूप में जमा कर रखा जाता और यह सोने के सिक्के ढालने के काम में आता।

कमेटी की शिफारिशों के अनुसार कार्य करने में गवर्नमेंन्टका पहला काम पौंड को भारत में १५ रु० में चलाकर उसे चलता सिक्का बना देना ही था। उसने रुपये को अपरिमित प्रचलित सिक्का रखा अतएव इसकी बहुत अभिवृद्धि हुई साथ ही सोने के सिक्कों के एक बहुत थोड़े अंश को भी उनने अपरिमित चलता-सिक्का बना दिया। रुपये की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये और रुपया ढालने की आवश्यकता हुई। रुपये से सरकार को बहुत लाभ हुआ। सन् १९०१ में जब १८९३ के उपरांत पहली बार नये रुपये ढाले गये तो उसके लाभ ही से सोने का रक्षित कोष बनाया। इस कोष के रखने का उद्देश्य यह था कि भारत में सोनेका सिक्का चलाने में और सुविधा हो जाय और साथ ही रुपये का भाव भी वही बना रहे, जैसा कि १८९९ में निश्चितकर लिया गयाथा। भारत में सोनेका सिक्का चलानेके लिये भारत सरकार चार वर्ष होम गवर्नमेन्ट से लिखा पढ़ी करती रही। पर जब न

यही निश्चय हुआ कि पौंड भारत में चलाया जाय अथवा भारत का ही कोई नया सिक्का बनाया जाय तो मामला ठंढा पड़ गया। इसके उपरान्त भारत सरकार ने अपने अन्तिम निश्चय के अनुसार सोने का सिक्का भारत में चलाने का प्रयत्न किया। उसने डांकखानों तथा उनके अधिकारियों से कहा कि वे गवर्नमेन्ट की प्रत्येक मांग पर सोना ही दिया करें। इस प्रकार मार्च १९०४ तक ७ करोड़ रुपये का सोना भारत में प्रचलन में कर दिया। इसका कुछ अंश तो प्रचलन में रहा; किन्तु अधिकांश गवर्नमेन्ट के पास ही लौट आया। अतः भारत में सोने के सिक्के की स्थिति इस प्रकार है,—भारत सरकार का कोई अपना सोने का सिक्का नहीं है। सन् १८९९ के ऐक्ट के अनुसार सावरिन अर्थात् पौंड भारत में भी चलता सिक्का मान लिया गया और उसका मूल्य १५ रु. निश्चित हुआ।[२] इस प्रकार गवर्नमेन्ट प्रत्येक पौंड के प्रति १५ रु. देने के लिये वाध्य है। किन्तु इसके विरुद्ध निश्चित दर में वह रुपये के बदले सोने का सिक्का या सिल देने के लिये वाध्य नहीं।

स्थानीय प्रचलन में प्रायः ऐसे सिक्के ही अधिक हैं, जिनका प्रचलन मूल्य वास्तविक मूल्यसे बहुत अधिक है। सन् १८९–१९०४

१—भारत में सोने के सिक्कों का परिमाण जो भिन्न २ वर्षों में सर्वसाधारण के हाथ आये। (सहस्रों पौंड में) (उधर—

के थोड़े से प्रयत्न के पश्चात् प्रचलन में और अधिक सावरिन नहीं आये। हां, वे रह गये जो व्यापार कार्य में बाहर से आते थे। किन्तु सेक्रेटरी आफ स्टेट ने इन्हें भी न आने देने का यथा संभव प्रयत्न किया। उनने कहा कि वे भारत को हुंडियां देंगे जिनका भाव प्रति रुपया १ शि० ४ $\frac{1}{2}$ पें० होगा। इस प्रकार फाउलर कमीशन का बिचार विफल हुआ, कारण कि भारत में न सोने का निश्चित सिक्का है, न सोने की करन्सी है, और न सोने के लिये मुफ्ती टकसाल है। इसके बदले एक नवीन प्रणाली का विकास हुआ।

इसके पूर्व कि हम वर्तमान प्रणाली का विचार करें, दो बातें जान लेना अत्यावश्यक है। इनमें से पहली बात सिक्कों के

वर्ष	सर्वसाधारणके हाथोंमेंआयेपौंडोंकापरिमाण	वर्ष	सर्वसाधारणके हाथोंमेंआयेपौंडों का परिमाण—
	पौंड		पौंड
१९०१—०२	९६७	१९०८—०९	३,४४३
१९०२—०३	२,१९८	१९०९—१०	२,८८६
१९०३—०४	३,२७८	१९१०—११	८,०११
१९०४—०५	२,९३७	१९११—१२	८,८८१
१९०५—०६	३,७३२	१९१२—१३	११,३००
१९०६—०७	५,१५६	१९१३—१४	३,९०७
१९०७—०८	७,४२७	१९१४—१५	५,६२३

२—सन् १९१९ की करन्सी रिपोर्ट के अनुसार भारत सरकार ने पौंड का मूल्य १० रु० कर दिया है।

सुधार से सम्बन्ध रखता है। सन् १८३५ में एक ही सिक्के के प्रचलन से लेकर सन् १८९३ में टकसाल बंद होने के समय तक अर्थात् ६० वर्षों में सिक्कों के सुधार, उनके आकार प्रकार, परिवर्तन और खोटे सिक्कों के निकाल लेने के लिये कोई नियमित प्रयत्न न किया गया। पुराने सिक्कों में से अधिकांश खराब हो गये थे। परन्तु वे नये सिक्कों के साथ एकही भाव पर चलते थे। फल यह हुआ कि नये २ सिक्के तो जोड़ २ कर धर लिये गये और खराब पुराने सिक्कों की प्रचलन में भरमार रही। सन् १८९५ में भारत सरकार ने सुधारके प्रथम पदानुसार यह आज्ञा निकाली कि प्रान्तीय बैंक और सार्वजनिक कोष सन् १८३५ का जो रुपया पायें फिर उसे न चलायें। इसके पाँच वर्ष बादही १८४० के सिक्कों के लिये भी यही आज्ञा निकाली गयी। फल यह हुआ कि ३१ मार्च सन् १९०४ तक १८३५ के २३ करोड़ और १८४० के १४ करोड़ रुपये प्रचलन से निकल आये। किन्तु टकसालें पुराने सिक्के को बदलने में अब भी संलग्न थीं साथ ही वे देशी राज्यों के लिये भी सिक्के ढालती थीं, जिनने अंग्रेजी रुपये को अपने यहां स्वीकार कर लिया था। सन् १८९३-४ और १९०३-४ तक टकसालों में बने रुपयों की संख्या ५५.९ करोड़ थी, इनमें से २९.७ करोड़ रुपये करन्सी में बिल्कुल नये प्रचलित किये गये।

दूसरी बात देशी राज्यों की करन्सी के सम्बन्ध में है। मुगल साम्राज्य का अस्त होते ही अनेक देशी राजाओं ने स्वयं ही सिक्के

बनाने का अधिकार लेलिया और ब्रिटिश अधीनता में आजाने पर भी वह अधिकार उनसे न छीना गया। पर इस में संदेह नहीं कि इन राज्यों के जैसे पंजाब, नागपुर, अथवा अवध के, स्थानीय सिक्कों का स्थान अंग्रेजी रुपये ने लेलिया। फिर भी १८९३ मे ऐसे ३४ राज्य थे जो अपना सिक्का, जिस पर राज्य चिन्ह होता था, स्वयं बनाते थे और वही राज्य की सीमा के अन्तर्गत प्रचलित था। इन सिक्कों का वज़न और शुद्धता अंग्रेजी रुपये से बिल्कुल भिन्न थी और इसी से स्थानीय व्यापार में बड़ी कठिनता पड़ती थी। १८७६ के क़ानून के अनुसार गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह देशी राज्यों को अंग्रेजी रुपये की तरह उतने ही वजन और शुद्ध धातु के सिक्के अपने राज्य में चलाने के लिये कहे और ये सिक्के अंग्रेजी राज्य में भी लिये जायँगे। देशी राज्यों को भी अधिकार दिया गया कि वे अंग्रेजी टकसालों में अपने सिक्के ढलवाने के लिये चांदी भेजें। किन्तु केवल अलवर और बीकानेर के राज्यों ने ही इस अधिकार से लाभ उठाया। देशी राज्यों और उनकी प्रजा को अंग्रेजी राज्य के निवासियों का रुपया चुकाने में बहुत हानि उठानी पड़ती थी। उदाहरणार्थ कच्छ राज्य की कौरी का जो एक रुपये के ¼ के बराबर थी, और जिसका रुपये से परिवर्तन का मूल्य निश्चित हो चुका था, (३७९ कौरी=१०० रु०) भाव इतना गिर गया कि सन् १९०० में ६०० कौरी १०० रु० के बराबर हो गई। सन् १८७६ का क़ानून इन नई शर्तों के लिये लागू न था; पर

उनका चालू सिक्का प्रचलित बाजार भाव में लेना और बदले में अंग्रेजी रुपया देना उनने स्वीकार किया। १६ राज्यों ने, जिनमें कश्मीर, बडौदा, ग्वालियर और भोपाल भी सम्मिलत थे, यह प्रबन्ध स्वीकार कर लिया; किन्तु १४ राज्य अब भी इस से अलग हैं।

अब हम वर्तमान पद्धति के कार्य का विचार करेंगे। सोने का एक्सचेन्ज परिमाण, जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय ऋण चुकानेके लिये नियत मूल्य पर लभ्यहै, तब उस के ठीक राष्ट्रीय मुद्रा होने न होने में घोर अन्तर पाया जाता है। ऐसा कहा गया है कि यह पद्धति उन्नत सभ्य राष्ट्रों को एक न एक रूप में स्वीकार करनी ही पड़ती है। अन्य देशों में जैसे कि भारत में अन्तरार्ष्ट्रीय ऋण—शोध के लिये सोने की बचत करना बड़ा ही आवश्यक समझा जाता है; वे यह कार्य या तो सोना खूब एकत्र कर करते हैं, अथवा नाजुक अवसर में सोने का अबाधित रूप से देना बंद कर देते हैं अथवा विदेशी हुण्डियों का यथेष्ट संग्रह रखते हैं। इनमें से पहली रीति इंग्लैंड ने स्वीकार की है, दूसरी फ्रांस ने और तीसरी मुख्यतः आस्ट्रिया और रूस ने स्वीकार की है। ये समय पड़ने पर सोना बाहर भेजने के बदले अपनी विदेशी हुण्डियां विदेशी बाजारों में बेंच देते हैं और इस प्रकार यथेष्ट परिमाण में सोना एकत्र कर लेते हैं। यह पद्धति ऋणी देशों के लिये, जिन्हें सदैव मिलता तो कम है किन्तु देना अधिक पड़ता है, अत्यन्त सुविधा जनक है। इसके लिये उनके पास सदैव

यथेष्ट परिमाण में सोना रहना चाहिये। किन्तु यदि उनका सोना दूर २ तक लोगों के हाथ में बना रहे और आवश्यकता पड़ने पर एकत्र न हो सके तो यह आवश्यकता कदापि पूर्ण नहीं की जा सकती। इसके लिये यदि उनके पास स्वर्ण कोष रहे तो बड़ा अच्छा हो। किन्तु ऐसा करना भी व्यर्थ होगा यदि दस वर्ष में एक बार भी मांग न पूरी की जाय। इससे तो यही उत्तम है कि विदेशी हुण्डियां रखी जायें और आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं के द्वारा सोने के रूप में ही विदेशों को धन दिया जाये।

इस सम्बन्ध में भारत की दशा कुछ विचित्र है। साधारणतया भारतवर्ष एक ऋणी देश है। उसे सदैव ऋण पर ब्याज चुकाना पड़ता है, नौकरों की पेन्शन और फर्लो अलाउन्स देना पड़ता है इत्यादि। यह होम चार्ज—घर का खर्च कहलाता है और भारतवर्ष इसे इंग्लैंड को सोने के रूप में देता है। इसकी संख्या २ करोड़ पौंड है। यह धन कम्पनी के समय से ही इस प्रकार दिया जाता है कि होम गवर्नमेन्ट भारत सरकार पर हुण्डी निकालती है। ये हुण्डियां विदेशी हुण्डिया या कौंउन्सल बिल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस होम चार्ज में से भारत सरकार के कारण इंग्लैंड में जो ऋण लिया गया वह कम होना चाहिये। युद्ध के पूर्व भारतवर्ष प्रत्येक वर्ष लन्दन के बाजार में निश्चित ऋण लेने वाला था, अतएव भारत सचिव का होम चार्ज के लिये धन परिमाण बहुत कम होगा, संभवतः १५,०००,००० पौंड होगा। किन्तु इसके विरुद्ध

भारतवर्ष को सदैव व्यापार के कारण इंग्लैंड से बहुत धन मिलता था, जो कि उस पर शेष रह जाता था। अतः रुपया देने की दो रीतियां थीं। एकतो भारत से इंग्लैंड को होम चार्ज दिये जाते थे जिनका परिमाण कुल घटा कर १५,००० ००० पौंड होता था और दूसरा इंग्लैंड द्वारा भारत को दिया जाता था और इसका परिमाण होम चार्ज से अधिक था। भारत की वर्तमान करन्सी पद्धति के निर्माताओं ने रुपये का मूल्य स्थिर रखने का उपाय ढूंढ लिया। सन् १९०४ में तद-नुसार भारत सचिव ने यह प्रकट किया कि वे हिन्दुस्तान पर १ शि० ४$\frac{१}{८}$ पें० के हिसाब से अनिश्चित हुण्डियां बेचेंगे, और आधुनिक गोल्ड एक्स चेंज के प्रमुखों ने इस में करन्सी की बहुत ही उपयोगी बचत की साथ ही वैज्ञानिक पद्धति ढूंढ निकाली।

इस प्रकार काउन्सिल बिल पर सारी पद्धति का कार्य चल रहा है। इस पद्धति का आलोचनात्मक विचार करने के पूर्व इन बिलों के बेंचने के क्रम का संक्षेप में उल्लेख कर देना उचित है। प्रति सप्ताह भारत सचिव द्रव्य का परिमाण जिस पर कि वे भारत को हुण्डी बेंचने के लिये तयार हैं, प्रकट कर देते हैं; इसका सुरक्षित मूल्य न्यूनातिन्यून होता है जो किसी को नहीं मालूम होता। बुधवार के दिन प्रातः काल इंग्लैंड बैंक में टेंडर के लिये बिल दिये जाते हैं। टेंडर से द्रव्य का परिमाण जानलिया जाता है जिसे वे मोल लेने को तैयार हैं और रुपये का मान भी

पेनी के रूप में जान लिया जाता है जितने पर कि वे लेने को तयार हैं। सबसे ज्यादा बोली बोलने वाले को वह दे दिया जाता है और उसी समय आगामी सप्ताह में बेंचेजाने वाले द्रव्य का परिमाण भी बता दिया जाता है। उस सप्तांह में यदि मांग चटक रही तो यह द्रव्य अधिक होगा। इन बुधवारों के बीच में भी कुछ बिल बेंचे जाते हैं जो स्पेशल कहलाते हैं और उनका भाव प्रति रुपया १ शि० ३२ पें० रहता है। यह भाव आगामी बुधवार को सबसे अधिक बोली के मूल्य से भी अधिक रहता है। इन बिलों के लेनेवाले को नक़द दाम देना पड़ते हैं और तब वे भुनाने के लिये हिन्दुस्तान भेज दिये जाते हैं। जैसा कि पहले था साधारणतया मेल १५ दिन में हिन्दुस्तान पहुँचताथा अतएव, जब तक लंदन में पन्द्रह दिन पछि सोने के रूप में उनका चुकौता (Payment) न होजाताथा तब तक वे भारतमें रुपयेके रूपमें नहीं दिये जाते थे। इसी लिये जो पन्द्रह दिनके लिये अपनी रकमके ब्याज को नहीं खोना चाहते थे वे तार द्वारा ट्रान्सफर होने की खबर भारत में भेजने के लिये कुछ अधिक जमा कर देते हैं। यह ब्याज अनुमान ५ प्रति सैकड़ा या एक हजार पौंड पर २ पौंड अर्थात् $\frac{1}{2}$ पेंस प्रति पौंड होता है। तार द्वारा खवर देनेसे इंगलैंड में जमा करने के कुछ ही घंटे बाद हिन्दुस्तान में जमा कर लिया जाता है। सेक्रेटरी आफ़ स्टेट ऐसे ट्रान्सफर प्रायः १ शि० २ पें० के हिसाब से भेजा करते हैं। ये हुन्डियां अथवा ट्रान्सफर मद्रास, कलकत्ता और बम्बई में अदा किये जा सकते हैं और यह अदायगी रुपया या नोटों के रूप में होसकती है।

इस प्रकार काउन्सिल बिल[1] का पहले से अधिक विस्तार है। १९०० के पूर्व होमचार्ज देने के लिये ये भारत और इंग्लैंड में परस्पर द्रव्य के परिवर्तन का काम करते थे। किन्तु इस सन् से भारत में सोना भेजने का काम करने लगे। इसके अनेक कारण हैं:-(१) १½ प्रति सैकड़ा नफा अथवा होमचार्ज के अतिरिक्त प्रति दस लाख पीछे १५००० पौंड अधिक बेचे जाते हैं। १५ रु० प्रति पौंड के हिसाब से भारत में पौंड के बदले में सदा रुपये मिल सकते हैं अतः बैंक भारत को सोना ही भेजेंगे और काउन्सिल बिल न खरीदेंगे; क्योंकि जितना व्यय भारत को सोना भेजने में होता है, बिल का भाव उससे अधिक हुआ तो उसके खरीदने से क्या लाभ? व्यापार की गतिविधि के अनुकूल भाव बदला करता है। पर युद्ध के पूर्व २ पेंस प्रति पौंड से कदापि अधिक न था। जिस समय बैंकों को भारत में रुपयों की जरूरत होती है उस समय यदि भारत सचिव १ शि०४ पेंस से कम में न बेचेंगे तो सोना भेजा जायगा। इसी सोने द्वारा भारत में रुपयों का परिवर्तन हो जायगा और यदि यही दशा रही तो भारत सरकार को अधिक रुपये बनाने के लिये इग्लैंड से चांदी खरीदनी पड़ेगी। चांदी का मूल्य सोने के रूप में देना पड़ेगा अर्थात् जो सोना खजाने में जमा होगया है वही जहाज द्वारा इग्लैंड भेज दिया जायगा। इस प्रकार भारत सोने से भी हाथ धो बैठेगा।

---

१ इन कौंसिल बिलों—विलायती हुंडियों का बेचना भारत सरकार ने बंद कर दिया है।

यों भारत की दोनों ओर से हानि होगी। एकतो भारत सचिव के १ शि. ४$\frac{१}{८}$ पेंस से कम में न बेंचने पर $\frac{३}{३२}$ पेंस प्रति रुपये की हानि होगी और फिर इंग्लैंड को सोना भेजने का व्यय जिस से प्रति रुपया $\frac{१}{४}$ पेंस की कुल हानि होती है। (२) इसके अतिरिक्त करन्सी कोष में सोना रखने से इंग्लैंड का स्वतः का लाभ है; क्योंकि यदि नीति पलट जाय और भारत सरकार को इंग्लैंड पर स्टर्लिंग ड्राफ्ट निकालने पड़े तो उनकी अदायगी के लिये भी तो फंड होना चाहिये। ऐसे फंड न होने पर भारत सरकार को सोना भेजना पड़ेगा जिससे एकतो अधिक व्यय होगा और दूसरे यहभी संभव है कि आवश्यकता पड़ने पर सोना न मिले। (३) इसके अतिरिक्त काउन्सिल बिल के फ्री बेंचने से भारत का बाकी बचा हुआ रुपया इंग्लैंड को परिवर्तित किया जासकताहै और इसप्रकार व्यापारमें भारतकी साख बढ़ेगी। यदियह न भी हो तो भी भारत सचिव को केवल व्याज के रूप मे ही लाभ होगा। इसी से भारत सचिव ने हिसाब से बिल बेचे हैं, जिससे न केवल इंग्लैंड से ही भारत को सोना आना रुक गया है प्रत्युत इजिप्ट और आस्ट्रेलिया से भी रुक गया है।

ऊपर हमने कई बार स्वर्ण कोष का उल्लेख किया है। हमें इस कोष की उत्पत्ति और वर्तमान स्थिति के विषय मे कुछ कहना है। खजाने वगैरा के अतिरिक्त भारत सरकार के दो और कोष हैं एक तो पेपर करन्सी कोष और दूसरा गोल्ड स्टैंडर्ड कोष। यद्यपि दोनों का अब अत्यंत निकटस्थ सम्बन्ध है तथापि

स्पष्टता के लिये हम दोनों का अलग २ वर्णन करेंगे। इनमें से इस परिच्छेद में हम सोने के सिक्कों के विषय में ही लिखेंगे। कागजी सिक्के का वर्णन हम दूसरे प्रकरण में करेंगे। इसका प्रारंभ १९०१ से होता है। यह सोने के रिजर्व फंड की तरह खोला गया। रुपये ढालने में जो ३०००००० पौंड लाभ हुआ उसी से इसका प्रारंभ हुआ। ज्यों २ रुपये की मांग बढ़ती गयी त्यों २ अधिक रुपये बनाये गये और वैसा ही अधिक लाभ होने लगा और फंड की तरक्की होने लगी। हमें यहां सरकार की रुपये ढालने की नीति के गुणों का वर्णन नहीं करना है; कहने का तात्पर्य केवल यह है कि रुपये बहुत ही शीघ्र २ बनवाये गये और इस प्रकार फंड की दिनों दिन तरक्की होने लगी। ३१ मार्च सन् १९०६ के दिन इसमें १ करोड़ २०½ लाख पौंड थे। इस वर्ष के पिछले आधे हिस्से में व्यापारिक आवश्यकता के लिये सिक्कों की मांग बढ़ी। इतनी शीघ्र मांग बढ़ना रोकने के लिये गोल्ड रिजर्व फंड की एक शाखा सिलवर रिजर्व फंड के नाम से खोलदी गई। यह प्रस्तावित हुआ कि इसमें ६ करोड़ रुपये रखे जायें।

अब इसकोष में १ करोड़ ७० लाख पौंड हो गये थे। जिसमें १ करोड़ २०½ लाख तो इंग्लैंड ही में थे, ४० लाखपौंड भारत में रुपये के रूप में थे और शेष भारत में सोने के रूप में थे। कुछ दिनों तक तो इस फंड का नाम सोने चांदी का कोष रहा पर १९०७ में इसका नाम स्वर्ण कोष ही रहगया। १९०८

की घटनाओं से यह प्रगट हो गया कि इस कोष सम्बन्धी नीति में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है । १ सितम्बर १९०७ में पौंड रिजर्व की स्थिति इस प्रकार थी:—

सोना

भारत में पेपर करन्सी रिजर्व	४,१००,००० पौंड
लंदन में ,, ,, ,,	६,२००,००० पौंड
शीघ्र ही आने वाला द्रव्य:	
गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व (लंदन)	५०,००० पौंड
नक़द बाकी (लंदन)	५,१५०,००० पौंड
अमानत	
करन्सी कोष में	१,३००,००० पौंड
गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व में	१४,१००,००० पौंड
	३०,९००,००० पौंड

इस प्रकार भारत सचिव के पास प्रायः ३ करोड़ १० लाख पौंड थे, जब कि एक घटना होने का किसी को सन्देह तक न था । इनमें से प्रायः $\frac{1}{3}$ नक़द था और शेष इधर उधर फैला हुआ था अथवा कर्ज दिया गया था । इन नक़द में भी केवल ४,१००,००० पौंड सोने के रूप में भारत में थे और शेष लंदन में थे । इसके उपरान्त एक घटना हुई । सन् १९०७ में वर्षा कम हुई और फसल मारीगई । भारत से निर्यात में कमी हो रही थी किन्तु आयात का परिमाण वैसा ही बना था । अतएव व्यापार

का बाकी धन खटकने लगा। इसी समय अमेरिका की आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त बिगड़ी हुई और नाजुक हो रही थी। नवम्बरके प्रारंभ मे इंग्लैंड बैंक ने अभूत पूर्व सोने की मांग से डिस्काउंट की दर बढ़ा दी। इसका प्रभाव भारत सचिव पर पड़ा और वे ६ नवम्बर को केवल २००,००० पौंड के ही बिल बेंच सके। इसके उपरान्त कई सप्ताह तक वे एक भी बिल न बेंच सके। और हुण्डी के बाजार से अलग हो जाने के अतिरिक्त होमगवर्नमेंन्ट ने अवस्था से सामना करने का और कोई उपाय न किया। अपने सदा के आधार से विहीन भारत सचिव लंदन की करन्सी रिजर्व के सोने के हिस्से से अपना व्यय चला रहे थे। उसी समय भारत में सोना भेजने की घोर आवश्यकता बढ़ रही थी। किन्तु अवस्था एक दम नई होने के कारण भारत सरकार ऐसा करने के लिये तत्पर न थी। रुपये का मूल्य जो १ शि. ४ पेंस से भी अधिक था अब गिरने लगा यहां तक कि २५ नवम्बर १९०७में उसका भाव १ शि.३ $\frac{११}{१६}$ पें. ही रहगया। भारत सरकार बाहर भेजने वालों को सोना देने के लिये राजी न थी अतएव सरकार ने एक दिन में १०००० पौंड से अधिक का सोना बाहर भेजने के लिये देना अस्वीकार किया। दशा बढ़ती ही गयी और अन्ततः दिसम्बर में फिर काउन्सिल बेंचे जाने लगे और सरकार ने रुपये की कीमत स्थिर रखने के लिये कठिन से कठिन उपाय किये। उनने तार द्वारा निश्चित दर हुन्डी हस्तांतरिति करना स्वीकार किया और यह अन्त में स्टर्लिंग बिल के

रूपमें परिवर्तित हो गया, जिसका कमसे कम निश्चित मूल्य १ शि० ३$\frac{२९}{३२}$ पें० प्रति रुपया था। नियतकों ने एक दम इससे लाभ उठाया और तीन ही मास में लंदन का लभ्य-स्वर्ण-कोष खाली पड़ गया। दशा नाजुक होती चली, भारत में ५००,००० पौंड प्रति सप्ताह के हिसाब से बिल बेंचे जाते थे, आगे यहीं १,०००,००० पौंड प्रति सप्ताह बेंचे जाने लगे। ये लंदन में गोल्ड रिजर्व से स्टर्लिंग सिक्योरिटी की आमद से लंदन में केश किये जाते जाते थे। अगस्त १९०८ में १ करोड़ ४० लाख अमानत में से दशा सुधारने के लिये ८,०००,००० पौंड बेंचे गये। सितम्बर १९०८ के प्रारंभ में स्थिति इस प्रकार थी:—

सोना:—	१९०७ पौंड	१९०८ पौंड
भारत में करन्सी कोष	४,१००,०००	१५०,०००
लंदन में करन्सी कोष	६,२००,०००	१,८५०,०००
शीघ्रही आने वाला द्रव्य:—		
गोल्ड स्टेंडर्ड रिजर्व (लंदन)	५०,०००	शून्य
नक़द बाकी [लंदन]	५,१५०,०००	१,८५०,०००
अमानत पौंड के रूप में:—		
करन्सी कोष में	१,३००,०००	१,३००,०००
सोनेके सिक्के के रूपमें	१४,१००,०००	६,०००,०००

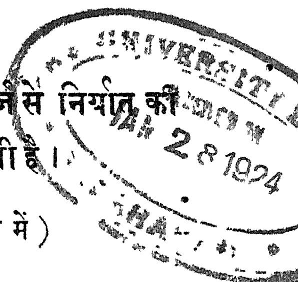
१९०७ में भारत साचिव के पास ३ करोड़ १० लाख पौंड थे अब एक वर्ष उपरान्त उनके पास ११,०००,०००

पौंड हो गये । भिन्न २ कोषों से २ करोड़ पौंड काम में लाने के अतिरिक्त भारत सचिव ने भारत के लिये गये ४,५००,००० पौंड के ऋण से भी बहुत सहायता ली । इस प्रकार एक ही बार में भारत सचिव की दशा को २५,०००,००० पौंड की बना कर कमज़ोर कर दिया । यदि दूसरे वर्ष भी यही दशा रहती तो अवश्यही अधिक ऋण लेना पड़ता ।

वर्तमान भारतीय पद्धति विषयक सभी आवश्यक बातों का विचार हम संक्षेप कर चुके हैं; किन्तु इस समय हम यदि बातों का आलोचनात्मक परीक्षण न करें तो हमारा कार्य अधूरा रह जायगा । सन् १९०७–८ की घटना से सिद्ध हो गया कि भारत में सोने के सिक्के पर जगद्व्यापी कठिनता के समय में कठोर आक्रमण होना संभव था । किन्तु सरकार ने ऐसी नीति धारण की और उसी समय वह इंग्लैंड में वह सोने के सिक्के की आमद को बढ़ाती गयी, कि इस पद्धति के आलोचकों ने इसकी जो बुराइयां बतलाईं थीं उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ा । सन् १९१३ में एक राजकीय कमीशन की स्थापना हुई जिसके अनुसार भारत सरकार की साधारण बाक़ी रक़म की जांच की गई; लंदन में बिल और ट्रान्सफर बेंचने की जांच कीगई; भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा रुपये की क़ीमत स्थिर रखने में जो उपाय काम में लाये गये थे उनकी भी जांच की गई; और विशेष कर कागजी सिक्कों के कोष की अवस्था और गति का निरीक्षण किया गया; यह भी देखा गया कि इन बातों के सम्बन्ध में जो

उपाय किये जा रहे हैं वे भारत के लिये हित कर हैं या नहीं; इन्डिया आफिस की साम्पतिके स्थिति की रिपोर्ट और सिफारिशों के लिये भी इस कमेटी की प्रस्थापना हुई। रिपोर्ट में वर्तमान पद्धति की संरक्षा के लिए सिफारिश थी अतएव उसके आलोचक अत्यन्त अप्रसन्न हुए। हमें आलोचकों की आलोचनीय बातों और पद्धति के निर्धारकों की समर्थक बातों का विचार करना है। हम आलोचनीय स्थलों का सार यहां लिखते हैं:—

१८९८ की करन्सी कमेटी के दूसरे ही वर्ष जिस पद्धति का विकास और परिपोषण हुआ वह कमेटी की सिफारिशों से बिलकुल भिन्न है। सरकार ने सोने के सिक्कों के प्रचलन के साथ सोने की मुक्त टकसालों के लिए सर्व साधारण के सम्मुख कमेटी की सिफारिशों को स्वीकार किया था, किन्तु कुछ समय उपरांत ही एक साधारण प्रयत्न के अतिरिक्त सरकार ने कमेटी की सिफारिशों को पूर्ण करने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। यहां हम इसी बात का विचार करेंगे पद्धति में जिस साधारण सन्तोष का जिक्र है और जिसका आधार वैज्ञानिक है; जहां तक उसका भारतसे सम्बन्ध है वहां तक उसका उत्थापन समुचित नहीं हुआ है। यद्यपि भारतएक ऋणी देशहै तथापि उसका निर्यात जैसाकि निम्न अंकों से प्रगट होगा प्रति वर्ष बढ़ रहा है, जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय ऋण का सम्बन्ध है वहां तक भारत का कुछ न कुछ नक़द रूप में लेना ही बाकी रह जाता है, देना नहीं; और वह भी होम चार्ज निकाल देने बाद।



सूची जो आयात और होमचार्ज से निर्यात की अधिकता प्रगट करती है।

(सहस्त्रों पौंड के रूप में)

वर्ष	+ आयात	‡ निर्यात	अधिकता	होम चार्ज
१८९९—१९००	५० २००	७२,४६३	२२,२६३	१६,१२९
१९००— ०१	५३,९२९	७१,८१२	१७,८८३	१६,९८२
१९०१— ०२	५९,१८७	८३,२६३	२४,०७६	१६,८०७
१९०२— ०३	५७,२१२	८६,२६४	२९,०५२	१७,६६७
१९०३— ०४	६१,७२८	१०२,३४४	३४,६१६	१७,३९९
१९०४— ०५	६९,६०८	१०५,१४८	३५,५४०	१८,८२७
१९०५— ०६	७४,७४२	१०७,८९०	३३,१४८	१७,६६६
१९०६— ०७	७८ १६१	११८,०१९	३९,८५८	१८,३२३
१९०७— ०८	९१,०२५	११८,३२३	२७,२९८	१७,७६८
१९०८— ०९	८५,८५२	१०२,०९५	१६,२४३	१८,३२३
१९०९— १०	८१,७६५	१२५,२७५	४३,५१०	१८,४४१
१९१०— ११	८९,१३३	१३९,९०४	५०,८६१	१८,६०५
१९११— १२	८६,०३७	१५१,९९३	५५;९५६	१८,८६५
१९१२— १३	१११,०८६	१६४,१४६	५३,०६०	१९,३०२
१९१३— १४	१२७,५४०	१६६,००५	३८,४६५	१९,४५५
१९१४— १५	९६,६२१	१२१,४५०	२४,८२९	१९,५२५
१९१५— १६	९१,७००	१३३,०००	४२,३००	१९,४०३

+ गवर्नमेन्ट स्टोर्स भी इसी में सम्मिलित हैं।

‡ निर्यात के अंकों में पुनर्निर्यात भी सम्मिलित है।

इन अंकों से विदित होताहै केवल कि १९०८—०९ में बाकी की रक़म भारतके प्रतिकूल थी। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय ऋण चुकाने के लिये सोने के अच्छे कोष की आवश्यकता भारत में अधिक प्रबल नहीं है। अन्य ऋणी राष्ट्रों को यह देखना चाहिये कि प्रचलन-गत-स्वर्ण, यदि उनके यहां सोने के सिक्कों का प्रचार है, इतना अधिक नहीं फैल जाता कि बाहर भेजने के लिये उन्हें हाथ फैलाना पड़े। किन्तु भारत में सोने के निर्यात की आवश्यकता—जो भारत के निर्यात की कमी को प्रकट करती है--कभी २ हुआ करती है। जब दस वर्ष में एक बार आवश्यकता पड़ती है तब कागजी सिक्कों का साधन ही आवश्यकता से अधिक होता है। हम सरकार के वसीलों के बारे में कह रहे हैं; क्योंकि सरकार को होमचार्ज देना पड़ता है अतएव एक्सचेंज के बाजार में उसी की मुख्यता रहेगी। अगले प्रकरण में हम इस बात का विचार करेंगे कि यदि हमारा कागजी सिक्का सोने पर स्थिर रहे तो क्या वह चांदी की तरह सोने की भी बचत कर सकेगा? व्यापारिक समुदाय की आवश्यकता के सम्बंध में सिक्कों की बातरतीब तादाद के सम्बन्ध में भी जब हम अनिश्चित विदेशी हुण्डियों का बिक्रय देखते हैं तो क्या साधारण व्यापारिक संस्थाएं इस काम को नहीं कर सकतीं? इसमें ही कौन सी विशेषता है और विशेषकर जब कि हम उसे इस कार्य में असफल देख रहे हैं। अतएव प्रस्तुत पद्धति यद्यपि ऋणी देशों के लाभार्थ है तथापि भारत जैसे देश के लिये वह अनुपयुक्त है।

२. भारत की रोकड़ बाक़ी के भारतीय तथा इंग्लैंड के प्रबन्ध सम्बन्ध में भी अभी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। नीचे भारत सरकार की रोकड़ बाकी और बजट की कमी और बढ़ती के सम्बन्ध में सूची दी जाती है।

वर्ष *	रोकड़ बाकी § भारतमें	रोकड़ बाकी इंग्लैंड में ‡	बढ़ती या कमी	विशेष
	पौंड	पौंड	पौंड	* यह रोकड़
१८९९—१९००	८,४२६	३,३३१	+ २,७७४	बाकी वर्ष के
९००—०१	११,५९९	४,०९२	+ १,६१०	अन्तमें समझी
९०१—०२	११,८८०	६,६९३	+ ४,९५२	जाय।
९०२—०३	१२,०८२	५ ७६८	+ ३,०६८	§ इन अंकों
९०३—०४	११,८७०	७ २८५	+ २ ९९७	में रिजर्व ट्रे-
९०४—०५	१०,७५०	१०,२६३	+ ३,४५६	जरी और प्रे-
९०५—०६	११,७८१	८,४३७	+ २,९०२	सीडेन्सी की
९०६—०७	१०-३२८	५,६०७	+ १,५८९	बाकी भी स-
९०७—०८	१२,८२२	५,७३८	+ ३०६	म्मिलित है।
९०८—०९	१०,२३६	८,४५४	- ३,७३८	‡ भारत स-
९०९—१०	१२,२९२	१५,८१०	+ ६०७	चिव के प्रति
९१०—११	१३,५६७	१८,१७४	+ ३,९३६	बाकी के अंक
९११—१२	१२,२८०	१९,४६४	- ३,९५०	इस में सम्मि-
९१२—१३	१९,५४३	११,४१९	+ ३,३६१	लित हैं।
९१३—१४	१५,६०८	१२,४७७	+ ८८७	
९१४—१५	१४;७१५	८,१६३	- १,९२९	
९१५—१६	१२.०१५	१२ ८२४	- २,६४४	

सन् १९०३ से भारतसरकार की यह नीति रही है कि वह अपना अतिरिक्त द्रव्य इंग्लैंड भेज देती है और वहां उसे सोने के रूप में रखती है। इस नीति का तात्पर्य यही है कि द्रव्य के प्र-

चलन प्रवाह में भारत सचिव की गति स्थिर रह सके और वे कुछ ब्याज भी कमा सकें साथही भारतसरकार के अनुकूल द्रव्य परिवर्तन का अवसर भी दे सकें। इन्हीं बातों के आधार पर कमीशन ने लिखा है:—"अतएव इन वर्षों में सरकार ने जो मार्ग ग्रहण किया है हम उसमें कोई दोष नहीं देखते; क्योंकि भारत के लिये ऋण सम्बन्धी जो शर्तें थीं उनकी ऐसे ऋणों के प्रति बहुत कम आवश्यकता थी।" किन्तु इन रोकड़ बाकियों का निरीक्षण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि इनका कारण अतिरिक्त आय है। यदि यही कारण है तो इससे सिद्ध होता है कि अर्थ सचिव ने अनुचित नीति का प्रयोग किया है अथवा अपना हिसाब जमाने में उनने अनुचित सावधानता से काम लिया है यद्यपि सावधानी एक अर्थ सचिव को बहुत ही आवश्यक है तथापि उसकी अतिशयता अनुचित है। १९–१४ १५ की कमी को निकाल कर १५ वर्ष से अधिक की अतिरिक्त आय जो ३००.७५ लाख पौंड होती है, यह सिद्ध करती है कि लोगों से आवश्यकता से अधिक लिया गया है। यदि इस अतिरिक्त आय से फिर भविष्य में बोझा न डाला जाता अथवा प्रस्तुत मालगुजारी में कमी कर दी जाती तब भी उचित था; किन्तु भारत सरकार ने इन दो में से एक भी बात नहीं की है अतएव जनता के साधनों का यह दुरुपयोग अथवा अनुचित नाश करना ही है। कमिश्नरों ने तो यही समझ लिया है कि इस अतिरिक्त आपको उपर्युक्त दोनों बातों को पूरा करने की अपेक्षा इंग्लैंड ही भेज देना चाहिये। वे ऋण घटा देने की संभावना की निन्दा

करते हैं। यदि यह मान भी लें कि जो अतिरिक्त आय का रुपया लंदन भेजा जाता है उससे ये दोनों बातें पूरी भी की जायें तो भारत सचिव के हाथ में २ प्रति सैकड़ा के हिसाब से ही रोकड़ बाकी रख भारत सरकार के लिये ३½ प्रति सैकड़ा की दर से ऋण लेने के कार्य के विषय में हम क्या कहेंगे ;

इंग्लैंड में जो ऋण लिया गया उसकी सूची।

वर्ष	नया ऋण	रोकड़ बाकी इंग्लैंड में
१८९९—१९००	६,५००	३,३३१
१९००—०१	१४,४२२	४,०९२
१९०१—०२	६,००९	६,६९३
१९०२—०३	५,०००	५,७६८
१९०३—०४	३,५००	७,२९५
१९०४—०५	३,०००	१०,२६३
१९०५—०६	१४,४८०	८,४३७
१९०७—०८	२,०००	५,६०७
१९०८—०९	१०.७७७	५,७३८
१९०९—१०	११,३४२	८,४५४
१९१०—११	१५,०६९	१५,८१०
१९११—१२	१३,८७८	१८,१७४
१९१२—१३	७,३५५	१९,४६४
१९१३—१४	३,०००	११.४१९
१९१४—१५	१४,७१५	१२,४७७
		९,१६३

इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष इस अधिकता का होना मानो प्रचलनमें से अधिक संख्यामें सिक्कोंका हटा लेना है, इसके फल स्वरूप द्रव्य के बाजार में बड़ी खलबली मचती है। यह ठीक है कि विदेशी हुण्डियों के भुगतान से भारत में यह कमी पूरी करदी जाती है; किन्तु इसके और अनेक कारण हैं जो द्रव्य के बाजार की कुछ बातों से भिन्न हैं। इग्लैंड में बैंक के भाव बढ़ जाने पर अथवा भारत की उपज की अधिक दाम के लालच से रोक लेने आदि पर विदेशी हुण्डियों की आवश्यकता पड़ सकती है; किन्तु मालगुजारी की बसूलात तो यथा क्रम प्रचलित रहेगी। इसके अतिरिक्त जब भारत का माल बाहर भेज दिया जाता है तत्पश्चात् कहीं कौंन्सिल बिल की आवश्यकता पड़ती है; किन्तु भारत में ज खेत बोए जाते हैं तभी से द्रव्य की अधिक आवश्यकता पड़ती है। इस सम्बन्ध में इंग्लैंड में रोकड़ बाकी के रुपये में धन रखने का समर्थन नहीं किया जा सकता। हम यह नहीं कह सकते कि इंग्लैंड में रोकड़ बाकी रहे ही नहीं; क्योंकि जब तक हम होमचार्ज की तरह धन लेते रहेंगें तब तक हमें इंग्लैंड को द्रव्य भेजना ही पड़ेगा और उसका कुछ न कुछ अंश भारत सचिव के पास बच रहना संभव ही है। हम यह अवश्य कहेंगे कि (१) अर्थ सचिव ५००,००० पौंड से अधिक का—यद्यपि यह भी अधिक है—बजट बनाना छोड़ दें, (२) यदि ५,०००,००० पौंड से अधिक का बजट होजाय तो सबसे पहल टेक्स की कमी की ओर ध्यान देना चाहिये [३] यदि यह न होसके तो कम से कम

इसके आधे भाग से तो नये ऋण की अधिकता को रोक देनी चाहिये (४) यदि इन बातों मे से एक भी न हो सके तो कम से कम सार्वजनिक ऋण को तो कम करना चाहिये, जिसमे भारतीय रुपये के ऋण पर पहले ध्यान दिया जावे ताकि द्रव्य के बाजार की दशा का सुधार हो और साथही इस देश मे भारत सरकार की साख भी बढ़े, [५] तात्पर्य यह कि किसी दशा में भी ५,०००,००० पौंड से अधिक कदापि न होने चाहिये, जो भारत सचिव के पास रोकड़ बाकी के रूप मे रहे।

३. तीसरी बात जो भारतीय करन्सी पद्धति से सम्बन्ध रखती है वह है विदेशी हुन्डियों के विक्रय मे सम्बन्ध। जैसा कि पूर्व में लिख चुके हैं कि समस्त पद्धति जिस आधार पर काम कर रही है वह कौन्सिल बिल ही है। इसका मुख्य कार्य रुपये का मूल्य १ शि० ४$\frac{1}{8}$ पें० स्थिर रखना है जो लंदनमे १ शि० ४ पें० मे बेचा जाता है और जो भारतमें अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर १ शि० ३$\frac{2}{8}$ पें० के हिसाब से बेचा जाता है। इनसे भारत के अतिरिक्त आप को लन्दन में सोने के रूप मे परिवर्तित कर देने मे सहायता मिली है साथ ही वहां से भारत में सोना न आने देने मे में भी सहायता मिली है। १९१३ के कमीशन ने इन बातों को स्वीकार करते हुये इन बिलो को अनावश्यक बतलाया है और उनके विक्रय परिमाण को परिमित करने का निश्चय किया है साथ ही उनके

अधिक बेचें जाने का कारण व्यापारिक बाहुल्य बतलाया गया है अतएव उसने उनके परिमित करने का निश्चय छोड़ दिया।

विदेशी हुण्डियों के विक्रय परिमाण तथा होमचार्ज के परिणाम की सूची।

वर्ष	००० घटाकर वैदेशी हुण्डियों का विक्रय कौन्सिल बिल)	होम चार्ज घटाकर	फी रुपया-पेनी के हिसाब से औसत दर.
	पौंड	पौंड	पौंड
१८९९—१९००	१९,०६९	१६,१८९	१६.०६७
१९००—०१	१३,३००	१६,९८२	१५.९७२
१९०१—०२	१८,५३९	१६,८७७	१५.९८७
१९०२—०३	१८,४९९	१७,६६७	१६.००२
१९०३—०४	२३,८५९	१७,३९९	१६.०४९
१९०४—०५	२४,४२५	१८,८२७	१६.०४५
१९०५—०६	१,५६६३	१७,६६६	१६.०४२
१९०६—०७	३३,४३२	१८,३३३	१६.०८४
१९०७—०८	१५,३०७	१७,७६८	१६.०२९
१९०८—०९	१३,९१५	१८,३२३	१५.९६४
१९०९—१०	२७,४१६	१८,४११	१६.०४१
१९१०—११	२६,४६३	१८,००३	१६.०६०
१९११—१२	२७,०५८	१८,३३३	१६.०८३
१९१२—१३	२५,७५९	१८,९८६	१६.०५८
१९१३—१४	३१,२००	१९,४५५	१६.०७०
१९१४—१५	७,७४८	१९,५२५	१६.००४

(अ) अनिश्चित परिमाण में कौंसिल ड्राफ्ट बेचने के कारण ही भारत में सोना आने में रुकावट होती है। यद्यपि यह ठीक है कि भारत में सोना आने देने से सरकार को प्रति दस लाख पौंड १५ ००० पौंड की हानि होती है; और अनिश्चित परिमाण में हुन्डी बेचने से आवश्यकता से अधिक एक करोड़ या इससे अधिक पौंड प्रति वर्ष सरकार भेजती है, जिसमें उसे प्रति वर्ष १५०,००० पौंड की प्रति वर्ष हानि होती है। किन्तु यह बात भ्रमपूर्ण विचार पर स्थित है। सरकार मालगुजारी के प्रत्येक वर्ष के प्रारंभ में यह जानती है कि उसे इतना धन होम-चार्ज के लिये इग्लैंड भेजना है। इसी के परिमाण के अनुसार बिल बेंचे जाने चाहियें। इसके अतिरिक्त यह संभव है कि सरकार को इग्लैंड में स्टोर खरीदने और रुपये ढालने के लिये तथा चांदी खरीदने के लिये सोने की आवश्यकता पड़े। किन्तु स्टोर खरीदने के लिये पहले ही बजट बन जाता है और वह वार्षिक बजट के साथ होम चार्ज की तरह भेजा जाता है। रही चांदी खरीदने की बात सो वह अनिश्चित है। इसका उपाय रुपये का और भी अधिक विचारयुक्त वैज्ञानिक पद्धति से ढालना है। हम इस सम्बन्ध में सरकार की नीति का अवलोकन करेंगे। यह कह देना ही पर्याप्त है कि यदि सिक्के बनाने की आवश्यकता पहले ही प्रकट हो जाये तो बजट में ही चांदी खरीद लेने का उपाय किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि सरकार की

आवश्यकता को इस प्रकार प्रकट कर देना अनीतिक होगा। किन्तु सरकार चांदी को वर्ष भर में चाहे जब ले सकती है और व्यापारी सरकार के चांदी खरीदने की आशा से वर्ष भर तक मूल्य स्थिर नहीं रख सकते। इसके सिवा सरकार को प्रति वर्ष रुपये ढालने की आवश्यकता नहीं। जितने ही अधिक काल में चांदी का क्रय होगा उतनी ही कम व्यापार से होने वाली हानि होगी। किन्तु भारत सरकार का इंग्लैंड में अनीश्चित परिमाण में सोना रखने के लिये एक उत्तर दिया जा सकता है और वह यही है कि चाँदी के सिक्के बनाना बिल्कुल बंद कर दिये जायें। हम अन्यत्र इसकी प्रणालियों का विचार करेंगे जिससे करन्सी पद्धति में विशेष फेरफार न हो। यहां तो इसी से संतोष करलेना चाहिये कि यदि ऐसा हुआ तो इससे एक अत्यन्त अनिश्चित बात का निर्णय हो जायेगा (ब) अनिश्चित परिमाण में कौन्सिल बिल बेंचने का एक दूसरा कारण बताया जाता है. कि भारत में आर्थिक अवस्था की नाजुक दशा के कारण तथा भारत के प्रति व्यापार का रुपया बाकी रहने से सरकार को स्थानीय सिक्कों की एक्सचेञ्ज (विनिमय) की दर में, भारत में सोने के अभाव या कमी के कारण, कठिनता पड़ सकती हैं। यह बात सब ने स्वीकार करली है कि यह भारत में सोने के साधनों की ही कमी थी कि १९०७–८ में सरकार को सोने का निर्यात रोकना पड़ा। नीति के अनुसार निश्चित दर से रुपये के बदले में सोना देने के लिये सरकार बाध्य नहीं है। अतएव ऐसे अवसरों में भारत में

सोने का प्रचलन सर्वथा सरकार के अधीन रहता है। यदि उस सुविधा से सोने का बंधन रहित प्रचलन नहीं हो सकता तो रुपये की कीमत गिरने लगती है, और तब रुपये के रूप में चांदी की असली कीमत उसे रोक देती है। यदि कभी ऐसा हो तो इस पद्धति के प्रस्थापकों और प्रवन्धकों के सब विचार निर्मूल हो जायेंगे। यह आशा करनी चाहिये कि १६०७-८ की घटनाओं के उपदेश शीघ्र ही न भुला दिये जायेंगे, और भारत को प्रतिकूल एक्सचेंज (विनिमय) का भाव देखते ही सरकार १९०७-८ की तरह निश्चित दर में लंदन पर स्टार्लिंगड्राफ्ट, जिनकी दर १ शि० ३$\frac{२९}{३२}$ पे० प्रति रुपये से कम न होगी, बेंचने का प्रबन्ध करेगी। यह होने पर भी यदि भारत में बाहर भेजने लायक सोना होता तो भारत सरकार की दशा ठीक रहती, साख बढ़ी चढ़ी रहती और भारतीय हुंडी का बाजार भी ठीक रहता। सिर्फ सोने के फंड की बात और स्वतन्त्रता से सोना भेजने की सरकारी आज्ञा मात्र ही बहुत काम कर देती. जिससे साधारण गड़ बड़ न हो पाती। किन्तु यदि सरकार की अधिक गंभीरता से काम करने की आवश्यकता पड़ती तो फिर अपने कथनानुसार आज्ञा का परिपालन करना भी उसका कर्तव्य होता और भेजने वाले आराम से सोना बाहर भेज सकते थे। ऐसा करने में उन्हें १ करोड पौंड के सोने की कमी पड़ती जिसे वे दो वर्ष में फिर एकत्र कर सकते थे। यह कहा गया है कि

इस कार्य में सरकार ८०००० से १००००० पौंड तक की हानि होती; किन्तु यदि ऐसा होता भी तो वह दस वर्ष में एक बार। और यदि प्रतिवर्ष ८००० से १०००० के व्यय से सरकार सर्राफ में अपनी साख बढ़ा लेती तो वह व्यय सहज ही में अच्छी तरह पूरा किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त ऐसे अवसर के इस व्यय को हानि नहीं कहना चाहिये; वह तो इस परिमाण तक लाभ का अभाव मात्र है।

इस सम्बन्ध में हम अपने विचारों को संक्षेप में यों लिख सकते हैं [१] लंदन में कौन्सिल ड्राफ्ट का अनिश्चित परिमाण में बेचा जाना भारत के लिये अहितकर है जिससे थोड़े से लाभ के कारण भारत में सोने का आना बंद कर दिया जाता है। होमचार्ज का परिमाण तक अन्य ऐसे कितने ही व्यय इस बात को सिद्ध करते हैं कि कौन्सिल बिलों का परिमित विक्रय होना चाहिये। १० प्रति सैकड़ा सहसा आपत्तिके निवारनार्थ ऊपर की रकम में दिये जा सकते हैं यदि चांदी के सिक्के बनाने की कोई अच्छी सी स्कीम बनायी जाये तो चांदी के खरीदने का प्रश्न जो सर्वथा अनिश्चित है इन ड्राफ्टों के परिमित होने की आवश्यकता को मिथ्या नहीं कर सकता। और यदि रुपये का बनाना बंद ही कर दिया जाय तो फिर बात ही दूसरी हो जायगी।

४. कौन्सिल ड्राफ्ट के उपरान्त भारत में रुपये ढालने का प्रश्न विचारणीय है। सन् १८९३ में जनता के लिये टकसालें

बंद कर देने के पश्चात् सन् १९०० में प्रथम वार उचित रीति से सिक्के बनाने की ओर ध्यान दिया गया। फिर अगले ५ वर्षों में रुपये की मांग बढ़ती ही गयी और कार्य भी वराबर जारी रहा। जुलाई १९०५ में सरकारी कोष में १२,२५०,००० पौंड मूल्य के चांदी के सिक्के थे। किन्तु दूसरे महिने में सिक्का सम्बन्धी कार्य में यह सब धन व्यय होगया। दिसम्बर १९०५ में की ईंटों का कोष लुप्त होगया और रुपयों का कोष ७·६१ करोड़ ही रह गया। इसके अतिरिक्त लंदन में कौन्सिल की मांग सदा की तरह बढ़ती रहने के कारण नये सिक्के ढालना अत्यावश्यक था। अतः सरकार ने तेजी में चांदी खरीदना शुरू कर दिया। किन्तु इस नई चांदी के सिक्के बनाने में समय की आवश्यकता थी इधर भारत सचिव ने तार द्वारा हस्तांतरित कराने का भाव बढ़ाकर १ शि० ४ ५/३२ पेंस कर दिया। नये सिक्के बहुत अधिक संख्या में बने थे वे आवश्यकता से कहीं अधिक थे अतः यह बला तो टल गई और कठिनता भी मिट गई। किन्तु इस वर्ष के अनुभव से भारत सरकार को यह तो विदित होगया कि उसके रुपये की बहुत अधिक मांग है अतः अब से उसने बृहद् परिमाण में ढालना प्रारंभ किया। अधिकारी-गण यह तो करने लगे पर वे यह भूल गये कि जव व्यापार तथा जनता की वैभव वृद्धि में अधिक करन्सी की आवश्यकता होती है वहीं घटती में वह अधिक करन्सी फिर कोष में लौट आयेगी। वे यह भूल गये कि अधिक सिक्के बनाने का प्रभाव संचय

शील है। गत अनुभव के उपदेशों को वे भूल गये जब कि रुपये का मूल्य चांदी के बराबर था जब उसका संचय करना अथवा गलाना अधिक लाभप्रद था और लगातार अधिक सिक्के बनाने के बाद दूसरे ही वर्ष उन्हें रोकने की आवश्यकता पड़ती थी। इस दशा में बहुत शीघ्र रोकने की आवश्यकता पड़ी। सन् १९०७--८ की घटनाओं का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं जब कि रुपये के एक्सचेंज का भाव गिर गया था। रुपये प्रचलन से हटा लिये गये थे और जितनी शीघ्रता से परिवर्तन में सरकार सोना दे सकती थी उससे कहीं अधिक शीघ्रता से कोष में रुपये आने लगे। दिसम्बर मास तक यही संख्या १५·४ करोड़ हो गई। नवम्बर १९०८ तक एक दूसरी १३ करोड़ की संख्या में रुपये हटा लिये गयें। अर्थात् कुल मिला कर प्रचलन के सिक्कों में २८·५ करोड़ रुपयों अर्थात् १९,०००,००० पौंड की कमी हो गई। उस समय से भारत क्रमशः अभिवृद्धि की ओर बढ़ता गया और युद्ध समाप्त होने तक बराबर अपना व्यापार बढ़ाता गया। और क्योंकि सन् १९०८ के अनुभव से सरकार ने आवश्यकता पड़ने पर ही रुपया ढालने की नीति सीख ली थी अतः उस समय से कोई भय की बात नहीं हुई। किन्तु यह सब लिखना व्यर्थ होगा यदि यह न बता दिया जाय कि रुपया बनाने का नीति पहले से ही उचित आलोचना के लिये मुक्त रही है। निम्न-लिखित अंकों से प्रति वर्ष बनने वाले रुपयों की संख्या प्रगट

होगी साथ ही प्रति वर्ष नये सिक्के ढालने के सम्बन्ध के नये नियम के विषय में भी इससे अच्छी सहायता मिलेगी ।

सन् १८३५ से भारतीय टकसालों में बनाये गये कुल रुपयों की संख्या ।

	(००० छोड़ दिये हैं)			(००० छोड़ दिये हैं)
१८३५	१६,३९,७८	१८९२		१०,४६,५५
१८४०	३१,१६,७०	१८९३	(क)	७.८७,३०
१८४०	७६,६५,६०	१८९७	(ख)	१५,२४
१८६२	७०,६९,१२	१८९८	(ख)	७५,१९
१८७४	४,३५,२२	१९००	(ग)	११,८१,३९
१८७५	३,०९,९१	१९०१	(घ)	१०९१,३५
१८७६	४,०९,५०	१९०२	(ङ)	९,३१,३९
१८७७	१३,४८,०६	१९०३		२५
१८७८	९,६५,८५	१९०३	(च)	१०,२३,४७
१८७९	८,८७,२८	१९०४	(छ)	१६,०२,७८
१८८०	२,२१,८५	१९०५	(ज)	१२,७४,६०
१८८१	५५,९७	१९०६	(झ)	२६,३७,५०
१८८२	७,१४,८७	१९०७	(ट)	२५,२२,४९
१८८३	२,३१,४६	१९०८		३,०९,३२
१८८४	४,८४,८८	१९०९	(ठ)	२,२२.९७
१८८५	९,९०,३०	१९१०		१,७६,८८

१८८६	५,२०,२४	१९१०		५८,२३
१८८७	८,८६,००	१९११		९४,४३
१८८८	७,०७,६८	१९१२	(ड)	१२,४१,३९
१८८९	७,४६,६८	१९१३	(ढ)	१६,३२,६५
१८९०	११,७६,४१	१९१४		४,८३,७०
१८९१	६,४१,६९	१९१५		१,५२,७२

(क) इसमें बीकानेर राज्य के ५९० हजार रुपये सम्मिलित है।

(ख) काश्मीर और भूपाल के पुनः सिक्के ढालने के कारण

(ग) देशी राज्यों के २,०९,०२ रुपये सम्मिलित हैं।

(घ) ,, १,९०,४३ ,, ,,

(ङ) ,, २,९८,८६ ,, ,,

(च) ,, ११,६६ ,, ,,

(छ) ,, ५,९४ ,, ,,

(ज) ,, ३,२८ ,, ,,

(झ) देशी राज्यों के लिये ३,९० हजार रुपये सोने व चांदी के कोष में से ढाले गये (कलकत्ता ३२ लाख बम्बई १३५ लाख)

(ट) देशी राज्यों के लिये ९४ हजार रुपये तथा ४३२ लाख (गोल्ड स्टैंडर्ड रिज़र्व सिलवर) से बनाये गये।

(ठ) देशी राज्यों के लिये १,०१ हजार रुपये बनाये गये।

(ड) ,, ,, १६,५६ ,, ,,

(ढ) ,, ,, १२,७३ ,, ,,

नये रुपयों की खपत के लिये देश की वास्तविक योग्यता का विचार किये बिना ही और अपने स्वतः अनुभव का विचार किये बिना ही सन् १९०५-६ में सरकार ने रुपये बनाये और इस प्रकार पौंड-कोष रिक्त करदिया। यद्यपि व्यापार की अभिवृद्धि के समय रुपये न बनाने के कारण व्यापारियों को कुछ काल के लिये कठिनता अवश्य उत्पन्न होगी तथापि यदि असुविधा अधिक बढ़ जाये और घोर आवश्यकता ही आ पड़े तो सरकार चाहे जब चांदी मोल ले सकती है और उसके रुपये ढलवा सकती है, क्यों कि भारतीय टकसाले एक दिन में १३ लाख रुपये बना सकती हैं। यद्यपि यह ठीक है कि यकायक बाजार से यों चांदी खरीदने में सरकार को ज़्यादा क़ीमत देनी पड़ेगी; तथापि सिक्के बनाने की इस जिम्मेदारी के आगे यह हानि कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं है कि ऐन वक्त पर ही सरकार चांदी खरीदे; क्यों कि वह तो व्यवहार के लिये जरा दूर-दर्शिता से काम लेने पर पहले ही रुपये बनाने की आवश्यकता जान लेती है। और यदि इसका अनुमान करना असंभव हो तो हमें दो खराबियों में से एक चुनना पड़ेगी। एक तो रुपये के अभाव में व्यापारियों की असुविधा और दूसरे पौंड—कोषों का रिक्त होजाना। यहां वह देखना जरूरी है कि जब चुनने की अनिवार्य आवश्यकता आजाये तो कौनसी बात चुनना चाहिये। अतः इस सम्बन्ध में हम अपने विचार यों संक्षेप में प्रकट कर सकते हैं :—

[अ] सिक्के बनाने की फ्रांस देशीय पद्धति को स्वीका करना भारत सरकार के लिये अच्छा होगा। किन्तु भारत सोने के सिक्के आवश्यकता पर पूर्ण विचार किये बिना य विषय समझाया नहीं जा सकता। अतएव किसी अन्य परिच्छे में इस सबम्न्ध पर विचार करने के लिये हम इसे यहीं छोड़ दे हैं। [ब] यदि रुपये का ढालना अनिवार्य हो तो गतकाल रुपये की खपत के अनुभवपर स्थिति एक भलोभांति सोची ग प्रणाली के आधार पर ही रुपयों का निर्माण होना चाहिये।

वर्तमान पद्धति की जिन कारणों से कड़ी आलोचना क जाती है, उन्ही में से एक 'स्वर्णकोष' भी है। यह विषय तीन भागों में विभक्ति किया जा सकता है यथा [अ] कोष का उद्देश्य और उसकी प्रकृति [व] उसका संगठन और परिमाण [स] स्थापना।

(अ) इसके उद्देश्य और प्रकृति के सम्बन्ध में बिचार करते हुए फौलर कमीशन ने यह निर्णय किया था कि चांदी के सिक्कों के लाभ से इसकी प्रस्थापना की जाये, जो सोने के रूप में कोष में हो। और जब वह किसी परिमाण में हो जाये तो भारत में सोने के सिक्के चलाने के काम में आये। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट के ५९ वें पैरा में लिखा है, "हमारी समझ से यद्यपि भारत सरकार को रुपये के परिवर्तन में सोना देने के लिये नियम बद्ध न होना चाहिये और वह भी केवल स्थानीय कार्यों में, तथापि हम स्वर्ण कोष का यह मुख्य उपयोग मानते हैं कि जब कभी एक्सचेंज की दर निश्चित दर से घट जाये तब विदेश में भेजने

के लिये अवश्य उसका उपयोग है साथ ही जब कभी बहुत ही आवश्यकता आ पड़े अथवा समय पर उसका उपयोग आवश्यक हो; जब तक उसके कोष में सोना यथेष्ट परिमाण में संग्रहीत हो और जब तक कोष से सोना लभ्य हो तब तक सरकार भारत में रुपये के स्थान में सोना ही दे। इस सिफारिश तथा भारत में पौंड को प्रचलन का सिक्का बना देने की सलाह से यह समझ लेना असंभव है कि उससे भारत में सोने के सिक्के का उपयोग मेटने योग्य है। यद्यपि १८६८ की कमेटी ने यह प्रकट कर दिया था कि रुपया आगामी कुछ वर्षों के लिये, अपरिमित-प्रचलन-मुद्रा रहे, तथापि फाउलर कमेटी की रिपोर्ट से उसकी सिफारिशों को पढ़कर वह मतलब नहीं निकाल सकते. कि उसने स्वर्ण कोष की प्रस्थापना केवल सोने के रूप में रुपये के परिवर्तन मूल्य की संरक्षता के लिये ही की है। भारत सरकार की नीति आगे चलकर स्पष्ट हो गई कि इन स्वर्ण कोषों का उद्देश्य भारत में सोने का सिक्का चलाने का कदापि नहीं है। तिस पर भी १९१३ के चेम्बरलेन कमीशन ने तो उस पर अपनी विवेचना द्वारा और भी पक्की मुहर लगा दी। "सन् १९०७–८ के अनुभव से यह बात स्पस्ट होगई है कि कोष की आवश्यकता एक्सचेंज का भाव प्रतिकूल होने से विदेशी हुंडी के स्वच्छन्दता से न बेंच सकने पर न केवल होमचार्ज देने ही के लिये है प्रत्युत् व्यापार के अनुपयोगी अवशेष का भुगतान कर देने के लिये भी है, जिससे एक्सचेंज का भाव नियत दर से

न घट जाये। इसके विरुद्ध भारत में रुपये सावरिन के रूप में बदल देने के अभिप्राय से इस कोष की आवश्यकता नहीं है। सोना सारे संसार का द्रव्य है और भारत में भी और देशों के समान जब व्यापार का वसूल बाहरी के बकाये को चुकाने के लिये आन्तिरिक किंवा स्थानीय प्रचलन से कहीं अधिक सोने की आवश्यकता है।" किन्तु यहां हमें सिद्धान्त विरोध देख पड़ता है। जो लोग कोष को इसलिये आवश्यक समझते हैं कि उससे भारत में सोने का प्रचार होगा वे लोग उन लोगों के मत की कदापि प्रशंसा नहीं करते जो उन्हें केवल ऐक्सचेञ्ज को स्थिर करने के लिये ही बतलाते हैं। दूसरी श्रेणी के लोग तो यह समझते हैं कि आन्तरिक कार्यों में सोने के सिक्के की कोई आवश्यकता नहीं, पर प्रथम श्रेणी के लोग इस कारण उसे उचित बतलाते हैं कि एक्सचेञ्ज को स्थिर करने का एक सोना ही मात्र उपाय है। अस्तु;

अब दूसरी बात उनके संगठन और द्रव्य परिमाण के के विषय में है अतः यह कहना व्यर्थ है कि जिस उद्देश्य से उसकी स्थापना हुई है उसी के अनुकूल, ये दोनों बातें भी होनी चाहियें। किन्तु उसके उद्देश्य को ध्यान में लाते हुये जब ध्यान में आता है कि रुपये की एक्सचेञ्ज कीमत स्थिर रखने के लिये उनकी स्थापना हुई तब तो कोष का कार्य स्पष्ट ही आलोचनीय है। जैसा कि पूर्व में [illegible] आये हैं इन कोषों का प्रारम्भ सन् १९०० से हुआ। आगे के वर्षों में उनकी उन्नति और स्थिति निम्न लिखित अंकों से विदित होगी:—

स्वर्ण कोष का परिमाण, रचना और स्थापना क्रम द्योतक अंक।

	[illegible]लैंड में (सहस्त्रों पौंड में)				भारत में (सहस्त्रों पौंड में)				सहस्त्रों पौंड में
	[illegible]ार भाव [illegible]रा जमानत	शीघ्र ही नगद मिलने वाला	बैंक में सोना	कुल	ऋण और बुक क्रेडिट	सोना	चांदी	कुल	सब मिलाकर
	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड
१९०१	...	...	...	...	१,८३०	१,२००	...	३,००३	३,०३०
१९०२	३,४५६	...	...	३,४५६	...	...	...	...	३,४५६
१९०३	३,६५२	...	...	३,६५२	१	...	...	१	३,६५३
१९०४	६,०४१	...	...	६,०४१	१६७	...	...	१६७	६,२०९
१९०५	८,३८७	...	...	८,३८७	१५२	...	...	१५२	८,५३९
१९०६	१२,१२२	...	...	१२,११२	२८६	...	...	२८६	१२,४०९
१९०७	११,९६०	...	...	११,९६०	३०१	२१	४,०००	४,३२३	१६,२८३
१९०८	१२,९७८	१,१३१	...	१८,११०	...	...	४,०००	४,०००	१८,११०
१९०९	७,१३३	४६९	...	७,६०३	...	...	१०,५८६	१०,५८६	१८,१९०
१९१०	१२,६९५	३,०१०	...	१५,७०६	...	...	२,५३४	२,५३४	१८,२४०
१९११	१५,४०७	१,४७७	...	१६,८८५	...	...	१,९३४	१,९३४	१८,८१९
१९१२	१६,०८७	१,०७३	...	१७,१६१	...	...	१,९३४	१,९६४	१९,०९५
१९१३	१५०,९४५	१,००५	१,६२०	१८,५७१	...	...	४,०००	४,०००	२२,५७५
१९१४	१३,३००	९०७	२,३००	१६,५७७	३,०२५	६,२३३	...	९,२५८	२५,८३६
१९१५	१२,१४८	८	१,२५०	१३,४०६	७,०६९	५,२३८	...	१२,३०७	२५,६१३
१९१६	१६,२१८	५,७९२	...	२३,०१०	४,००१	२३८	...	४,२३९	२७,२४४

१९०७-८ में इसका परिमाण १८० लाख होगया था। इस समय यह निश्चित हुआ था कि सिक्कों पर जो मुनाफ़ा हो उसका कुछ अंश रेल बनाने के लिए व्यय किया जाये, किन्तु अन्त में यह विचार परित्याग कर दिया गया और धन स्वर्ण कोष में संचय होता गया।

बाजार भाव पर पौंडों की जमानतें	१७,७४५,५४३ पौंड
शीघ्र ही प्राप्त होने वाला द्रव्य तथा	
इंग्लैंड बैंक में सोना	४,३४४,९६२ पौंड
भारतीय शाखाओं में चांदी	४,०००,००० पौंड
	२६,०९०,५०५ पौंड

दो करोड़ साठलाख पौंड से अधिक पूंजी में से २/३ तो फैला हुआ था। नाजुक अवस्था में यह फैला हुआ द्रव्य बिना गहरे नुक्सान के वसूल नहीं हो सकता। अतः यदि हम इसे एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर रखने वाला ही मानलें तो भी इसकी स्थिति बड़ी भय प्रद है। कोष का धन फैला देने का मतलब यही था कि उससे ब्याज मिले। किन्तु जब अवसर पड़ने पर हानि उठानी पड़ती है तो सारे ब्याज से कहीं अधिक होती है। उदाहरण के लिये सन् १९०७—८ वाली बात ही लीजिये। उस समय ८,०००,००० पौंड की जमानतें बेंची गईं थीं। पाँच वर्षों में उस पर ३ प्रति सैकड़े का ब्याज मिलता अर्थात् प्रति वर्ष २४०,००० या ५ वर्ष में १,२००,००० पौंड

मिलता। श्रीयुत् अलखधारी के मतानुसार सन् १९०७--८ में जबरन जमानतों के बेचे जाने का परिणाम यह हुआ कि २२ लाख रुपये या १५०,००० पौंड से अधिक की हानि हुई। सन् १९०२--३ से १९११--१२ की भारतीय नैतिक और भौतिक रिपोर्ट में लिखा है कि "३१ मार्च १९१२ तक धनविनियोग अथवा पूंजी लगाने पर २,१०५ ८६९ का खालिस नफ़ा था। २,९५९१३८ पौंड ब्याज और डिस्काउंट-बट्टे के मिले थे और रक्षितधन ६७९,७०२ पौंड तक घट गया था और कुल हानि जो १५०,०८३ पौंड थी, जमानतों के बेचने आदि से वसूल करली गई थी। फुटकल खर्च में १०,४९० पौंड कूते गये थे।" ३१ मार्च सन् १९१६ के दिन १७,००७८३७ पौंड जमानतों की कीमत ¾ लाख के हिसाब से कम हो गई थी, जिसका बाजार भाव उस तिथिपर १६,२१८,६९२ पौंड कूता गया था। उस समय कीमत बहुत घटती गई। जनता के विश्वास पर इस कमी से बड़ा आघात पहुँचा। इस कोष का अच्छी २ से जमानतों पर भी धन विनिमय दोषाद्र है। चेम्बरलेन कमीशन ने लिखा था, "हमारा मत है कि स्वर्ण कोषों के ठीक २ सोने का परिमाण ५,०००,००० से कहीं अधिक है। वर्तमान स्थिति में हमारी समझ से तो सबसे अच्छा नियम यही होगा कि जब कुल जमा ३०,००० ००० पौंड से अधिक हो तो कम से कम आधा नक़द सोना जरूर कोष में रहने देना चाहिये और कम से कम १५,००० ००० पौंड यथा शीघ्र संचित कर लेने चाहिये।"

इस बात से हमें कोष के परिमाण पर विचार करना पड़ता है। तीन बातों द्वारा हम परिमाण का निश्चय कर सकते हैं यथा (१) प्रचलित सिक्के के परिवर्तन की आवश्यकताएं (२) भारत की व्यापारिक आवश्यकतायें (३) होमचार्ज। पहले के विषय में कहा गया है कि प्रचलन गत सब सिक्के और नोट आवश्यकता पड़ने पर सोने के रूप में परिवार्तित हो सकें तो स्वर्ण कोष का परिमाण १२०,०००,००० पौंड से १५०,०००,००० पौंड तक होगा। यह हिसाब इस गलत खयाल पर लगाया गया है कि यदि परिवर्तन की आज्ञा हो जाये तो समस्त रुपये और नोट एक बार ही बदलने के लिये लाये जायेंगे। कम से कम थोड़ा बहुत कागजी रुपया प्रचलन में जरूर रहेगा; क्योंकि अधिक परिमाण में देने के लिये सोना बहुत भारी है। दूसरे रुपयों का एक अधिक अंश भी प्रचलन में रहेगा; क्योंकि भारत का साधारण लेन देन इतने थोड़े परिमाण में हुआ करता है कि उसके लिये सोने के सिक्कों की आवश्यकता नहीं है। अतः यदि परिवर्तन की आज्ञा दे दी जाये तो भी एक तिहाई से अधिक नोट या रुपये परिवर्तन के लिये न आयेंगे। इसलिये हमें कोष के लिये चार या पाँच करोड़ से अधिक सोने की आवश्यकता नहीं। दूसरी ओर यदि हम हिन्दुस्तान के व्यापार के बक़ाया को जांच की तौर पर देखें तो विगत वर्षों में और आगामी पीढ़ियों में भी उसे इस ओर अनुकूलता थी और रहेगी। इसलिये केवल व्यापारिक हिसाब के लिये कोष में स्वर्ण एकत्र करने की आवश्यकता नहीं। यदि

भारत को होमचार्ज न देना पड़ता तो खराब से खराब अकाल में भी भारत की आर्थिक दशा न गिर पाती। कुछ समय के लिये भले ही एक्सचेंज की प्रतिकूलता हो जाये; किन्तु उन्नति के प्रवाह में वह दूर हो जायेगी। यह केवल होमचार्ज के ही कारण है कि एक्सचेंज की समस्या हमारे लिये चिन्ता जनक बनाई है। इस आधार पर भी यदि अधिक से अधिक द्रव्य होमचार्ज के लिये आवश्यक है तो वह २०,०००,००० पौंड हैं। यदि हम यह मानलें—यद्यपि यह बिल्कुल असंभव है—कि लगातार दो वर्षों तक व्यापारिक बकाया हमारे प्रतिकूल हो तो ऐसे समय में यह मानकर कि हमने इंग्लैंड से कुछ ऋण नहीं लिया, हमें होमचार्ज के लिये ४ करोड़ पौंड देना पड़ेंगे। अतएव कोष परिमाण ठीक २ रूप से ४०,०००,००० से ५०,०००,००० ही है। ५ करोड़ पर व्याज की हानि, २० लाख पौंड प्रति वर्ष होगी; पर एक्सचेंज की स्थिरता होने पर यह खर्च भली भाँति पूरा किया जा सकता है और हानि इस प्रकार कम की जा सकती है उसका एक तिहाई या आधा अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी जमानतों में लगाया जाये।

स्वर्ण कोष के सम्बन्ध में अन्तिम विचारणीय विषय है—कोष की स्थापना। जब से इसका प्रारंभ हुआ है तब से वह इंग्लैंड में ही रहा है। चेम्बरलेन कमीशन ने इस बातका इस प्रकार समर्थन किया है, "स्वर्ण कोष के लिये यदि कोई सब से अधिक उपयुक्त स्थान है तो वह निःसन्देह लन्दन ही है।"

साथ ही वे यह कह कर इसका और भी समर्थन करते हैं कि, "लदंन संसार का भुगतानगृह है, भारत का प्रधान ग्राहक यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैंड, स्काटलैंड और आयर्लैंड) है, और लदंन ही वह स्थान है जहां भारत की ओर से भारत सचिव को व्यय के लिये और इस देश को भारत के व्यापारिक व्यय के लिये तथा सम्पूर्ण संसार को ऋण देने के लिये द्रव्य की आवश्यकता है। यदि भारत में कोष रखाजाय तो जहाज द्वारा उसे लदंन भेजना पड़ेगा। इससे जहां पर त्वरित कार्य की आवश्यकता है उसमें विलम्ब हो जायगा। अतएव हमें यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि सम्पूर्ण स्वर्ण कोष लदंन में ही रखा जाना चाहिये।" यह सिफारिश भी गलत ख्याल पर स्थित है। (१) भारत में कोष के रखने से वह भारत की व्यापारिक जनता को नैतिक बल का साधन होगा। (२) लन्दन को जहाज द्वारा द्रव्य भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी; यदि गत कालीन अनुभव पर विश्वास किया जा सकता हो। (३) इसके अतिरिक्त यदि कोषभारत में रहेगा तो भारत सरकार सोने के रूप में ही ऋण दे सकती है, जिससे ब्याज की दर घट जायगी (४) अन्त में यदि कोष भारत में रहेगा तो उसका जो कुछ धन पूंजी में लगाया जायगा वह समय के रूप में लगाया जायगा, जिससे भारत सरकार की साख बढ़ेगी। इन सब बातों से यह कभी नहीं कहा जा सकता भारत में स्वर्ण कोप नहीं रखा जा सकता प्रत्युत् इस सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की जा सकती है।

सातवां प्रकरण

महायुद्ध और भारतीय मुद्रा ।



अबतक हमने भारतीय मुद्रा प्रचलन की स्थापना, नीति परिस्थिति आदि का संक्षेप में वर्णन किया है किन्तु गत् महा युद्धका भारतीय करन्सी के प्रत्येक अंग पर विशेष प्रभाव पड़ा है । यहां हम प्रधानतः दो बातों पर विचार करेंगे । (१) कौन्सिल ड्राफ्ट या विदेशी हुण्डियों पर महायुद्ध का प्रभाव और (२) नोटों पर महायुद्ध का प्रभाव ।

कौन्सिल ड्राफ्ट पर महायुद्ध का प्रभाव ।

सन् १९१४ और १५ के बजट के अनुसार भारत मंत्री की हुण्डियों के लिये २ करोड़ की रकम स्वीकृत हुई, पर उस वर्ष के पहले चार महिनों में व्यापारिक दशा के गिर जाने से हुण्डियों की मांग बहुत कम थी जब राजनैतिक परिस्थिति बदल गई और युद्ध प्रारंभ होगया तो व्यापार ढीला पड़गया और भारत से विदेश पूंजी खींची जाने लगी । भारतमन्त्री की हुण्डियों का भाव गिरगया । रुपये की स्टार्लिंग कीमत गिरने लगी और एक्सचेञ्ज में और भी गड़बड़ मच गई ।

सरकार यद्यपि रुपयों के बदले में सावरिन देने के लिये बाध्य न थी और इसी से रुपये की एक्सचेंज क़ीमत गिर जाने के लिये भी बाध्य न थी तथापि उसने उस समय भी यह कहा कि १ शि० ३$\frac{२१}{३२}$ पें० रखने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति काम में लायेगी। इसके लिये सरकार ने चेम्बरलेन कमीशन की हिदायतों के मुआफिक काम शुरू किया। पहले तो उसने कम से कम १,००० पौंड एक साथ लेने वाले व्यक्तियों अथवा कारखानों को इतने पौंड देना बंद किया; इसके बाद उसने ग़ैर सरकारी व्यक्तियों और पुरुषों को एक दम ही देना बंद कर दिया, जिससे स्वर्ण कोष अनुचित रूप से खाली न हो जाय। इसके उपरान्त उसने ३ पेंस की दर से कौंसिल ड्राफ्ट बेंचे जिनकी तादाद १० लाख पौंड प्रति सप्ताह थी इसके कुछ दिन बाद उसने तार द्वारा पौंडों के हस्तान्तरित पत्र बेंचने प्रारंभ किये। इनकी दर १ शि० ३ पेंस थी। इस प्रकार इस वर्ष में ८०·७ लाख पौंड के ड्राफ्ट बेंचे गये। इसकी कुल रक़म भारत के स्वर्ण मुद्रा कोष को दे दी गई और लंदन में भारत सचिव द्वारा जमा किया गया द्रव्य उसी हिसाब में ऋण मे लिख लिया गया। इस प्रकार उस वर्ष भारतसचिव ने ७०·७ लाख पौंड के ड्राफ्ट भारत पर बेंचे, किन्तु उस पर किये गये रिवर्स ड्राफ्ट के कारण भारतसचिव को ८०·७ पौंड देने थे। यह अवश्य ही विचित्र बात थी क्योंकि इसी के कारण सरकार का ध्यान पोस्ट आफिस बैंकों की तरफ

गया और यह स्वर्णकोष से ७० लाख पौंड ऋण ले कर पूरा किया गया। भारतसचिव ने अपना व्यय इस प्रकार पूरा किया:— (१) होम गवर्नमेन्ट से वार आफिस की तरफ से भारतसरकार द्वारा किये गये व्यय के ८०·७ लाख पौंड मिले। (२) ५०·६ लाख के स्थान पर १.६ करोड़ पौंड उधार लिये गये (३) पेपर करेन्सी कोष से १० लाख पौंड नकद बाकी में बदल लिये।

सन् १६१५–१६ के बजट में भारतसचिव के लिये ७०·१ लाख पौंड स्वीकृत किये गये। यद्यपि प्रारम्भ में एक्स-चेंज की दशा ढीली व कमजोर थी और ४०·६ लाख पौंड के स्टार्लिग ट्रान्सफर बेंचे गये थे तथापि सितम्बर में दशा सुधर गई और शीतकाल में कौन्सिल ड्राफ्ट की मांग बढ़ी; क्योंकि यद्यपि युद्ध होरहा था, तथापि नवीन आधारों पर व्यापार स्थापित हो गया था। चाय, चमड़ा और जूट का निर्यात अधिक था किन्तु मशीन, मूल्यवान धातु आदि का निर्यात कम था। इस प्रकार उस साल कौन्सिल ड्राफ्ट की बहुत मांग थी और भारतसचिव ने उस वर्ष २·४ करोड पौंड या अनुमान ३० करोड़ रुपये के ड्राफ्ट बेंचे। उतनी बड़ी रकम देने के अलावा भारत-सरकार को होम गवर्नमेन्ट की तरफ से अनुमान २३ करोड़ रुपये का व्यय करना था और साथही ४½ करोड़ रुपये के गेहूं खरीदना थे। इतना बड़ी आवश्यकता को पूर्ण करने के अभि-प्राय से उनने इंग्लेंड के पेपर करेन्सी कोष के पूंजीगत द्रव्य

को बढ़ाने का अधिकार प्राप्त किया, जिसके कारण भारत में १२॥ करोड़ रुपये इस प्रकार प्राप्त हो सके कि भारतसचिब ने उतना ही द्रव्य पौंडों के रूप में अपनी नक़द बाकी में से पेपर करेन्सी से बदल दिया और उसे खज़ाने की हुण्डियोंमें लगा दिया। इसके अतिरिक्त स्वर्ण-मुद्रा-कोष से भारत में नकदबाकी में १४१/४ करोड़ रुपये परिवर्तित कर दिये गये; इसमें भी भारतसचिव ने अपनी नकदबाकी से स्वर्ण-मुद्रा-कोष में उतनी ही रकम भेजदी। इन बातों के अतिरिक्त सरकार ने गहरी तादाद में चांदी के सिक्के ढाल कर और भी दशा सुधार ली। इस प्रकार १९–१५–१६ एक्सचेज में किसी प्रकार की गड़बड़ किये बिना व्यतीत हो गये।

इसके उपरान्त दूसरे वर्ष में भारतसचिव के लिये ५०.१ लाख पौंड की रकम मंजूर हुई; कारण यह था कि भारतसचिब को होम तथा आस्ट्रेलियन सरकार से १ करोड़ ८०.६ लाख की रक़म मिलने की आशा थी। किन्तु कपास, खाल, बीज, गेहूं आदि का निर्यात बढ़ जाने के कारण कौन्सिल ड्राफ्टों की इतनी ज़्यादा मांग हुई कि १ अप्रैल १९१६ से ४ दिसम्बर १९१६ तक भारत सचिव ने २ करोड़ पौंड के ड्राफ्ट बेंच दिये। इसके अतिरिक्त होम गवर्नमेन्ट की ओर से सरकार को अधिक व्यय उठाना था। मेसोपोटामिया, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका और मिश्र में बहुत माल भेजा जाने के कारण करन्सी की दशा बिगड़ गई। ऐसी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सरकार ने पेपर करन्सी कोष

के पूंजी में लगाये गये द्रव्य को और बढ़ाया। साथ ही उसने इंग्लैंड और हिन्दुस्तान दोनों ही जगहों में रुपये ढालने के लिये चांदी ख़रीदी।

इस प्रकार यह देखा गया कि जब तक हिन्दुस्तान में कोष की रकम यथेष्ट नहीं होगी तब तक ड्राफ्ट की मांग बढ़ती ही रहेगी। इस कारण भारत सचिव ने यह नोटिस निकाला कि आगे किसी नोटिस के निकलने तक ड्राफ्ट का बेंचना बंद रहेगा। हां, बुधवार के दिन ८० लाख रुपये के टेंडर लिये जायेंगे और वह भी बिल के लिये १ शि० ४ ३/८ पें० के हिसाब से और तार द्वारा स्थानान्तर के लिये ४ ७/३२ पें० के हिसाब से लिये जायेंगे इसके उपरान्त यह भी लिख दिया गया था कि किसी व्यक्ति या कारखाने की १० लाख रु० प्रति सप्ताह से अधिक की स्वीकृत न दी जायेगी।

इस विज्ञप्ति से बैंकिंग और व्यापारिक केन्द्रों में बड़ी हलचल मचगई; और, यद्यपि बुधवार को दिये गये टेंडरों में ज़्यादा रक़म के टेंडर भी लिये गये थे, तथापि इन बन्धनों से कई महत्व पूर्ण फल हुए। एक तो उनके द्वारा सराफे में एक मत हो गया। प्रधान एक्सचेंज बैंकों ने जब देखा कि वे अपने लंदन के आफिसों से रक़म न निकाल सकेंगे तो वे स्वच्छन्दता पूर्वक आगे न बढ़ सके। दूसरे उनसे बहुत सी हुंडियों की दर गिर गई। तीसरे निर्यात पर गहरा प्रभाव पड़ा क्योंकि आर्थिक दशा हीन हो रही

थी और अन्त में व्यापार साधारणतया इन्हीं बन्धनों को भोग रहा था ।

इस परिस्थिति को सुधारने के लिये बहुत से उपाय बतलाये गये। उदाहरणार्थ एक ने यह प्रस्ताव किया कि पेपर करन्सी कोष का पूंजी गत द्रव्य और बढ़ा दिया जाये। नोटों का प्रचलन बढ़ाने के लिये इस स्थिति के सुधारकों ने एक और दो रुपये के नोटों के चलाने का प्रस्ताव किया; किन्तु ये नोट अधिक प्रचार पा सकने योग्य नहीं है। यही नहीं इससे रुपयों को निश्चित सीमा तक पहुंचाने में बहुत समय लगेगा। पाँच रुपये तक के नोटों ने सिर्फ २½ करोड़ रुपये कम किये। जब तक कि प्रचलित नोटों में अभि वृद्धि नहीं होती तब तक पेपर करन्सी कोष का पूंजी का द्रव्य बढ़ा देना उस कोप पर व्यर्थ का भार डालना है। अस्तु; अन्य कुछ उपाय इस प्रकार थे:—

१. जापान और अमेरिका से सोने का आयात किया जाये।

२. भारत में पेपर करन्सी कोष का सोना निकाल लिया जाये।

इनमें से पहली बात के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इस आयात से एंग्लो-जापानी और एंग्लो अमेरिकन एक्सचेन्ज पर उलटा प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर यह कहा जा सकता कि एक्सचेन्ज पर प्रातिकूल प्रभाव क्षुद्र होगा पर सोने के आयात पर बन्धन डालने से हानि अधिक होगी। जब से अमेरिका ने मित्रों

का साथ लिया है तब से ऐंग्लो अमेरिकन एक्सचेन्ज उतना चिन्ता जनक नहीं रहा। साथ ही इन स्थानों से सोना आने का प्रबन्ध किया गया है। हम इसी प्रकरण में अन्यत्र एक्सचेन्ज की स्थिति का जो यहा युद्ध के उपरान्त थी, वर्णन करेंगे।

दूसरा उपाय अधिक संभव जान पड़ता है; क्योंकि यदि पेपर करन्सी कोष का सोना निकाल लिया जाये तो उतना ही द्रव्य भारत सचिव ड्राफ्ट बेंच कर पूरा कर लेंगे। सोने के निकाल लेने से रुपये की खींच होगी और इस प्रकार से रुपयों के स्टाक में वृद्धि होगी।

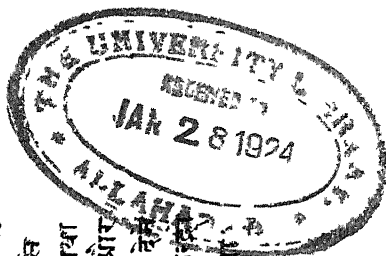
२ महायुद्ध और नोट प्रचलन।

महायुद्ध का पहला धक्का हमारी नोट-प्रचलन-पद्धत्ति की गम्भीरता का परीक्षक था। महायुद्ध के प्रारंभ होने पर भारतीय व्यापार नष्ट होगया, मारवाड़ी दलाल रक्षा के लिये बहुत दूर राजपूताने में अपने २ घर भाग गये। भारत सरकार का लंदन में देना वैसा ही बना रहा है पर इधर भारत का निर्यात कम हो चला। उसी समय पेपर करन्सी कोष और सेविंग बैंकों पर लोगों की धूम हुई। ऐसे समय में सरकार ने जनता के विश्वास को फिर से बढ़ाने के लिये बड़ी सावधानी से काम लिया। पहले तो उसने स्वच्छन्दता पूर्वक सोना देने की

आज्ञा देदी पर जब यह ज्ञात हुआ कि कोष का अधिकांश सोना खाली विचार में पड़े हुए व्यक्तियों द्वारा लिया गया और सरकार की साख का विश्वास चाहने वाले लोगों को नहीं मिलाया बहुत कम मिला तो सरकार ने, १० लाख पौंड इस प्रकार खो देने के बाद, प्राइवेट लोगों को सोना देना बिल्कुल बंद कर दिया। इसके उपरान्त लोग सेविंग बैंकों की ओर बढ़े। वे उनसे नक़द द्रव्य लेना चाहते थे, पर क्योंकि सरकार ने लोगों की इस इच्छा की पूर्ति के लिये सभी आवश्यक सुविधाएं कर दीं इस कारण अवस्था कभी ज़्यादा न बिगड़ने पाई। सेविंग बैंकों में ७० लाख पौंड की कमी हुई जो स्वर्ण मुद्रा कोष से ऋण लेकर पूरी की गई। इधर तो नोट भुनाने का इस क़दर जोर था उधर बम्बई, बर्मा और पंजाब में सन् १९१३ में बैंकों के फ़ेल हो जाने से साख वैसे ही गिर रही थी। कुल नोट जो प्रचलन से हट गये ७ करोड़ रुपये के बराबर थे।

महायुद्ध के प्रत्येक वर्ष में, जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, स्थानीय करन्सी की आवश्यकता बहुत बढ़ने लगी। इस कारण नोटों का प्रचलन बढ़ाया गया और १९१५ से पेपर करन्सी कोष का पूंजी गत द्रव्य धीरे २ बढ़ाया गया। सरकार ने क्रम २ से अपनी इस शक्ति का प्रयोग किया। ३१ मार्च १९१७ में स्थिति इस प्रकार थी:—

कुल—प्रचलन		कोष	
गत द्रव्य ··	८६,३७,५१,७३५ रु०	चांदी के सिक्के (भारत में)	१७,१०,७१,११८ रु०
कमी—विदेशी के केन्द्रों से प्रचलन से हटा लिया गया और हुण्डियां देने वाले केन्द्रों को दिया गया।		सोने के सिक्के और बुलियन (भारत में) ··	११,६६,६१,६३२ रु०
		बम्बई और कलकत्ते में सिक्का ढालने के लिये चांदी की ईंटे	१,६६,३२,७७२ रु०
		सोने के सिक्के, और (इंगलैंड में)	६,६७,५०,००० रु०
		चांदी की बुलियन (इंगलैंड में)	१३,३६,७७२ रु०
		हुण्डियां (भारत)	६,६६,६६,१४६ रु०
		,, (इंगलैंड)	३८,४६,१६,११५ रु०
		एक केन्द्र का दूसरे केन्द्र पर लेना या हुंडियां	२,५०,००० रु०
	८६,३७,५१,७३५ रु०		८६,३७,५१,७३५



इसके उपरान्त दशा में किस प्रकार परिवर्तन हुआ और करन्सी और एक्सचेन्ज की कैसी स्थिति हुई, इसका वर्णन

हमें करन्सी कमेटी की रिपोर्ट से करेंगे। इस सम्बन्ध में श्रीयुत् हालना जी ने तथा श्रीयुत् काले महाशय ने अपने कई लेख लिख कर भारतीय मुद्रा व्यवस्था और करन्सी कमेटी के विचारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। हम इस स्थान पर यत्र तत्र, आवश्यकीय परिवर्तन कर धन्यवाद सहित उन्हीं लेखों को उद्धृत करते हैं। आशा इससे पाठकगण करन्सी की स्थिति का ठीक परिचय पा सकेंगे।

"करन्सी कमेटी की एक्सचेंज यानी विलायती हुण्डी के सम्बन्ध में मुख्य सिफारिश यह है कि विलायती हुण्डी का भाव कम से कम दो शिलिंग रहे। आजकल विलायती हुण्डी का सरकारी भाव २ शि० ११ पें० है। यानी पहले १) रु० जमा करने पर विलायत में १ शि० ४ पें० मिलता था पर अब एक रुपया जमा करने पर विलायत में २ शि० ११ पें० मिलेंगे। रुपये का मूल्य दूने से अधिक हो गया। विलायत की हुण्डी का इतना अधिक भाव कर देने का मुख्य कारण करन्सी कमेटी ने चांदी का बहुत अधिक दाम हो जाना बताया है। सन् १९१५ में लंदन में चांदी का ज़्यादा से ज़्यादा २७। पेनी फ़ी औंस का भाव था; अप्रैल १९१६ में भाव बढ़कर ३५¾ पेनी हो गया और दिसम्बर में ३७ पेनी हो गया। अगस्त १९ में चांदी का भाव ४३ पेंस हो गया। करन्सी कमेटी ने दिखाया है कि जिस समय चांदी का भाव ४१ पेनी था और एक्सचेंज का रेट १ शि० ४ पेनी था उस समय रुपये का मूल्य पूरा था; पर चांदी का

भाव ४१ पेनी से ऊपर हो जाने पर उसमें घाटा होने लगता था। ज़्यादातर चांदी अमरीका में ही होती है। सितम्बर १९१७ में अमरीका गवर्नमेन्ट ने चांदी पर कन्ट्रोल कर लिया और बिना गवर्नमेन्ट की आज्ञा के चांदी बाहर नहीं जाती थी। इसका फल यह हुआ कि चांदी कुछ मद्दी हो गई। अक्टूबर १९१७ और अप्रेल १९१८ के बीच में लंदन में चांदी का भाव ४१$\frac{७}{८}$ और ४९$\frac{१}{४}$ पेनी के बीच में रहा। मई १९१८ और अप्रेल १९१९ के बीच में लंदन में चांदी का भाव ४७$\frac{३}{८}$ पेनी से ५० पेनी तक रहा। अमरीकन गवर्नमेन्ट ने हमारी गवर्नमेन्ट को भी बहुत चांदी १०१॥ सेंट फ़ी औन्स के हिसाब से दी। सेंट एक अमरीका का सिक्का है। दो सेंन्ट के बराबर एक पेनी होती है। मई में यूनाइटेड स्टेट्स व ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने चांदी पर से कन्ट्रोल उठा लिया। करन्सी कमेटी कहती है कि उसका फल यह हुआ कि मई १९१९ में चांदी का भाव ५८ पैनी हो गया। उसके बाद चीन की चांदी की मांग ज़्यादा बढ़ते रहने के कारण इसका भाव और तेज होता गया। १७ दिसम्बर को लंदन में चांदी का भाव ७८ पैनी था।

जैसे २ चांदी का भाव बढ़ता गया वैसे २ गवर्नमेन्ट एक्सचेंज का भाव बढ़ाती गई। नीचे दी हुई सूची से पता लगेगा कि किस प्रकार गवर्नमेन्टने कब २ एक्सचेंज का भाव बढ़ाया:—

तारीख		भाव
३ जनवरी १९१७	....	१ शि० ४॥ पेंस
२८ अगस्त "	....	१ शि० ५ पेंस
१२ अप्रैल १९१८	....	१ शि० ६ पेंस
१३ मई १९१९	....	१ शि० ६ पेंस
१२ अगस्त "	....	१ शि० १० पेंस
१५ सितम्बर "	....	२ शि०
२२ नवम्बर "	....	२ शि० २ पेंस
१२ दिसम्बर "	....	२ शि० ४ पेंस

इस सूची से यह पता लगेगा कि एक्सचेंज का ज्यादा रेट सन् १९२९ के अन्तिम आधे भाग में ही बढ़ा है। कोई नहीं कह सकता है कि एक्सचेंज का भाव कहां जा कर ठहरेगा।

एक्सचेंज के इस भाव से भारतवर्ष को क्या नफ़ा नुक्सान होगा यह हम आगे चल कर बतावेंगे। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि करेन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का भाव बढ़ाने के अतिरिक्त मुख्य रूप से इन बातों की सम्मति दी है कि (१) इस समय जो रुपया चल रहा है उसका वजन वही रहे और उसमें चांदी भी उतनी ही लगती रहे जितनी लगती है (२) अब से रुपये का मूल्य पौंड के हिसाब से निश्चित न हो कर सोने के हिसाब से निश्चित रहना चाहिये और गिन्नी में लगे हुए सोने के दशवें हिस्से यानी ११·३ ग्रेन सोने का दाम १) होना चाहिये

(३) गिन्नी का दाम १५) रु. की जगह १०) रु. होना चाहिये और गवर्नमेन्ट को क़ानून बनाकर यह बात तै करनी चाहिये (४) जबतक क़ानून द्वारा गिन्नी १०) रु. की न होजाये तबतक विदेशों से सोने के आने जाने की रुकावटें जारी रहें और बम्बई में सोने की टकसाल खुलनी चाहिये और लोग जो सोना दें उसकी गिन्नी बना देनी चाहिये। (५) गवर्नमेन्ट की जो यह प्रतिज्ञा है कि गिन्नी के बदले में रुपये दिये जायेंगे वह आज्ञा वापिस ले ली जाये। (६) चांदी के विदेशों से आने जाने की रुकावट दूर कर दी जाये और चांदी पर जो टेक्स लगाया गया है वह दूर कर दिया जाये। भारत मन्त्री ने इन बातों पर भारत सरकार से सलाह कर इन बातों को स्वीकार कर लिया है। इनमें से कुछ बातों के करने की आज्ञा भी दे दी गई है। चांदी पर जो ।) औंस का टैक्स था वह हटा दिया गया और चांदी आने की रुकावटें दूर कर दी गई पर चांदी बाहर न जा सकेगी। इस बात की भी आज्ञा दे दी गई है कि बाहर से आने वाला सोना गवर्नमेंट एक गिन्नी के १०) रु० के हिसाब से ले लिया करेगी। उधर गवर्नमेन्ट सोना बेंच २ कर भाव सस्ता कर देना चाहती है। जब भाव खूब सस्ता हो जायेगा तो हिन्दुस्तान में १०) रु० में गिन्नी लेने देने का कानून बनेगा।* सरकार ने करन्सी कमेटी की सम्मति

---

* सरकार ने गिन्नी का भाव १० रु० घोषित कर दिया जिसका विवरण इसी प्रकरण में अन्यत्र दिया गया है।

के अनुसार गिन्नियों के बदले में रुपया देने की आज्ञा वापिस ले ली है। गवर्नमैन्ट ने यह भी आज्ञा दे दी है कि अब लोग सोने और चांदी के सिक्कों को सिक्कों के काम के अलावा और कामों में भी ला सकते हैं।

इस कमेटी में श्री० दादी वा मरवान जी दलाल एक मात्र हिन्दुस्तानी मेम्बर थे। उनका मत कमेटी के अधिकांश मेम्बरों से नहीं मिलता है। उनके मत का खुलासा यह है कि:—

(१) गिन्नी का दाम १५) रु० ही रहना चाहिये।

(२) लोगों को सोने या सोने का सिक्का बाहर से मंगाने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाय।

(३) इस समय जो रुपया जारी है वह वैसा ही कानूनी सिक्का जारी रहे। पर जब तक न्यूयार्क में चांदी का भाव ९२ सेन्ट से ऊपर रहे तब तक यह रुपया ढालना मुलतवी रखा जाय।

(४) जब तक चांदी का भाव तेज रहे उस समय तक सरकार २) रु० का एक नया सिक्का चलावे और उसमें चांदी कम लगावे।

(५) गवर्नमेन्ट कम चांदी की एक नई अठन्नी ढाले और निकल की अठन्नी बंद कर दे।

(६) एक्सचेन्ज का भाव वही पुराना १ शि० ४ में कर दिया जाय।

(७) सरकार अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त और हुंडियां न करे और जो हुंडियां की जायें वे सालाना बजट में दिखाई जायें।

(८) एक रुपये के नोट जहां तक संभव हो शीघ्र बंद कर दिये जायें और जो मौजूद है वे काम में न लाये जायें।

(९) हिन्दुस्तान का जो रुपया विलायत्त में कागजों में मौजूद है उसका सोना करके हिन्दुस्तान में भेज दिया जायें।

(१०) प्रचालित सिक्कों को गलाने का जो लोगों का बहुत प्राचीन अधिकार है, उसमें सरकार कुछ बाधा न डाले।

(११) करन्सी नोट हिन्दुस्तान में ही छापे जायें।

करन्सी कमेटी के सामने अनेक लोगों की गवाहियां हुई थीं। उनमें कुछ लोगों ने यह राय दी थी कि या तो रुपया निकल का चलाया जाय या कम चांदी का चलाया जाय। श्रीयुत् दलाल की राय ऊपर दी हुई है। कमेटी के अधिकांश मेम्बरों ने इस बात का खण्डन करते हुए कहा है कि सन् १८३५ से रुपया इसी दशा में चला आ रहा है और गांव के सुनार तक इसे अच्छी तरह जान गये हैं, यही देश का असली सिक्का है

और हमें विश्वास दिलाया गया है कि यदि इसमें जरा भी फेर फार होगा तो सरकार की बात में बड़ा भारी बट्टा लगेगा और इसका फल बड़ा ही अनिष्टकारी होगा। कमेटी ने यह भी लिखा है कि चांदी का हलका रुपया जारी होने से ग्रेशम सिद्धान्त के अनुसार पुराना रुपया बाजार से लोप हो जायेगा और नये सिक्के की मांग बहुत बढ़ जायेगी और इसके लिए अधिक चांदी की जरूरत होगी जिसका मिलना बड़ा कठिन है। हमारी समझ में श्रीयुत् दलाल की राय बहुत ठीक थी। यदि करन्सी कमेटी ने श्रीयुत् दलाल की राय, ठीक नहीं समझी तो उसने १) रु. वाले नोटों पर अपना मत क्यों नहीं प्रकट किया? इन १) रु. वाले नोटों से भी तो ग्रेशम के सिद्धान्त के अनुसार पुरानें रुपयों का लोप होगा। चाहे करन्सी कमेटी ने ध्यान नहीं दिया पर हम आशा करते हैं कि श्रीयुत् दलाल की राय मान कर नहीं किन्तु करन्सी कमेटी के सिद्धान्त का ही अनुकरण करके गवर्नमेंट १) रु० वाले नोटों को शीघ्र बंद करने का उद्योग करेगी। छोटे सिक्कों में अठन्नी भी कीमती सिक्का है। यह समझ में नहीं आता कि करन्सी कमेटी ने किस सिद्धान्त पर निकल की अठन्नी बनाने के लिए गवर्नमेंट का समर्थन किया है।

पहले चांदी के सिक्के में गवर्नमेंट को खूब लाभ हुआ है, रुपये में ॥) आने की चांदी रहती थी। इस तरह सिक्के में जो लाभ

होता था वह स्वर्ण मुद्रा कोष में अलग जमा होता था । इस तरह सिक्के के फायदे से जमा होते हुए इस रिज़र्व कोष में नवम्बर १९१९ को ३ करोड़ ७४ लाख ३८ हजार ३१७ पौंड जमा थे । उचित तो यही था कि जब सिक्के के ढालने से जो लाभ हुआ वह इसमें जमा किया गया तो उससे हानि हो वह भी इसी फंड से लेना चाहिये । करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज के रेट बढ़ने से कई फायदे बताए हैं । एकतो चांदी तेज होने पर भी वह खरीद कर सिक्के बनाने के काम में लाई जा सकती है और इससे भारतवर्ष में गेंहू आदि आवश्यक पदार्थों का भाव भी सस्ता रहेगा । करन्सी कमेटी ने यह तो स्वीकार किया है कि एक्सचेंज के इस भाव से विलायत का माल आकर सस्ता पड़ेगा और इससे हिन्दुस्तान के रफ्तनी के व्यापार और कारीगरों को नुकसान होगा । पर वह कहती है ज्यादा नुकसान नहीं होगा । एक्सचेंज के इस भाव से भारत के गेहूं आदि आवश्यक पदार्थों का भाव जितना सस्ता होगा उतना ही भारत के लिये कल्याणकारी होगा उस समय अन्नादि का तेज होना किसी तरह उचित नहीं था । पर यह मानने के लिये हम तैयार नहीं हैं कि यदि एक्सचेंज का यह भाव न होता तो अन्न आदि का भाव इतना तेज हो जाता कि भारतवासी त्राहि २ ही करने लगते यह भी मानने के लिये हम तैयार नहीं हैं कि केवल भारतवासियों को आवश्यक पदार्थ अधिक सस्ते मिलने लगें इसीलिये एक्सचेंज का

का यह भाव रखा गया हो । हमारी समझ में करन्सी कमेटी की रिपोर्ट बड़ी ही असंतोष जनक है और इससे रफ्तनी के व्यौपार यानी एकसपोर्ट ट्रेड को बड़ा भारी धक्का पहुंचेगा। श्रीयुत दलाल ने यह बहुत ठीक कहा कि कि युद्ध के समय मे गवर्नमेंट जिन उपायों का अवलम्बन करती वही ठीक था पर युद्ध के बाद एकदम काया पलट कर देने वाले उपायों का अवलम्ब करना किसी तरह भी ठीक नही कहा जा सकता। करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का जो भाव बढ़ाने की सम्मति दी है वह यह समझ कर दी है कि संसार में चीजों का मूल्य बढ़ता ही जायगा, कम नहीं होगा। कमेटी कहती है कि यदि चीजो का भाव एकदम से घट गया और भारत मे कच्चे माल के पैदा होने में मज़दूरी आदि में खर्च ज्यादा पड़ने लगा तो फिर नये सिरे से इस मामले पर विचार करना पड़ेगा। हमारी समझ मे कमेटी को सभी बातों पर ख्याल करते हुए अपना मत निश्चित्त करना था। एक्सचेंज के इस भाव का एक लाभ यह भी बताया गया है कि १ शि० ४ पेंस के भाव मे हिन्दुस्तान से विलायत को होम चार्ज के लिये जो ३७॥ करोड़ रुपया भेजना पड़ता था उसकी जगह २५ करोड़ ही भेजना पड़ेगा यानी १२॥ करोड़ का लाभ होगा। पर पेपर करेन्सी रिज़र्व मे जो हिन्दुस्तान का रुपया पौंडों में जमा है उसका २ शि० के भाव से फिर से हिसाब लगाने पर उसमें ३८ करोड़ ४० लाख का नुकसान होगा।

कमेटी कहती है कि यह नुकसान ऊपर के फायदे से थोड़े दिनों में भर जायगा। कमेटी ने होम चार्ज में जो लाभ हुआ है उसे बहुत समझा है परन्तु नुकसान की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया। कमेटी होम चार्ज में जो १२॥ करोड़ का लाभ बतलाती है वह अप्रत्यक्ष रूप से भारतवासियों पर ही टैक्स लगाना है। जितना गवर्नमेन्ट को लाभ होगा उतनाही रुपया व्यापारियों और किसानों को अपने माल का कम मिलेगा। हमेशा के लिये एक्सचेंज का रेट १ शि० ४ पेंस या २ शि० या इससे अधिक होना हम किसी तरह भारत के लिये कल्याण कारी नहीं समझते। यदि थोड़े दिनों के लिये यह बात होती तो हम किसी तरह मान भी लेते। लन्दन के 'टाइम्स' पत्र ने भी यह बात स्वीकार की है कि एक्सचेंज के इस (रेट) भाव से विलायत से हिन्दुस्तान को माल भेजने वाले व्यापारियों के हर तरह पौबारह होंगे और हिन्दुस्तानी व्यापारियों को नुकसान होगा। पर हिन्दुस्तानियों के आंसू पोंछने के लिये वह कहता है कि अजी सारे संसार में हिन्दुस्तान के कच्चे माल की बहुत मांग होगी इस लिये उसे घबराना नहीं चाहिये। इस रिपोर्ट में और भी अनेक आवश्यक बातें हैं। श्रीयुत् दलाल कहते हैं कि गिन्नी का कानून से जो १५) रु० का भाव नियत है उसे बदलने का सरकार को अधिकार नहीं है। वे कौन्सिल के अन्य कानूनो की अपेक्षा निश्चित भाव को अधिक पुष्ट समझते हैं। वे कहते हैं

कि इससे गवर्नमेन्ट के अतिरिक्त लोगों को बड़ी हानि होगी; क्योंकि इस समय लोगों के पास करीब ५ करोड़ गिन्नियां है। कमेटी ने राय दी है कि पेपर करन्सी रिज़र्व में जितने नोट जारी हों उनके पीछे ४० रु० सैकड़ा रोकड़ रहना चाहिये पर श्रीयुत् दलाल की राय है कि ८०) रु० सैकड़ा रहना चाहिये।

पेपर करन्सी रिज़र्व (संरक्षित कोष)

यदि युद्ध के समय में करन्सी कमेटी एक दम से कायापलट देने वाले उपायों के अवलम्बन करने की सम्मति देती तो उनका समर्थन किया जा सकता था पर जब युद्ध खतम हो गया है ऐसी दशा में किसी प्रकार इन उपायों का समर्थन नहीं किया जा सकता। युद्ध के पहले यह नियम था कि पेपर करन्सी रिजर्व में जो खजाना रहता है उसमें से ज्यादा से ज्यादा १४ करोड़ रुपये तक के ब्रिटिश ट्रेजरी बिल्स आदि माकूल तरह के प्रामिसरी नोट रखे जा सकते हैं। पर युद्ध के समय में गवर्नमेन्ट ने १ नये २ हुक्म निकाल कर इस १४ करोड़ रुपये की तादाद को १२० करोड़ रुपये कर दिया है। इस युद्ध के समय में नोटों का प्रचार रहने से तिगुना बढ़ गया है। पहले जो नोट जारी होते थे उनकी जगह करीब ८० फी सदी चांदी या सोना पेपर करन्सी रिज़र्व में रहता था अब करिब आधा रहता है। नीचे दिये हुये नक्शे से पाठकों को सब बातें विशेष रूप से मालूम होगी:—



पेपर करन्सी रिज़र्व का ब्यौरा

रुपयों की तादाद लाखों में

	कुल नोट जारी हुए	चांदी	सोना	कागज	मीज़ान	कुल जारी नोटों पर फी सदी सोना चांदी
३१ मार्च १९१४	६६१२	२०५३	३१५९	१४००	६६१२	७८.९
३१ „ १९१५	६१६३	३२३४	१५२९	१४००	६१६३	७७·३
३१ „ १९१६	६७७३	२३५७	२६१६	२०००	६७७३	७०·५
३१ „ १९१७	८६३८	१९२२	१८६७	८४९	८६३८	४३·९
३१ „ १९१८	९९७९	१०७९	२७५२	६१४८	९९७९	३८·४
३१ „ १९१९	१५३४६	३[illegible]३९	१७४९	९८५८	१५३४६	३५·८
३१ नवम्बर १९१९	१७९६७	४७४४	३२७०	९९५३	१७९६७	४४·६

इस ऊपर दिये हुये नक्शे से विदित होगा कि सन् १९१४ १९१५ और १९१७ में इन ३ सालों में नोटों का प्रचार प्रायः वही रहा। किन्तु सन् १९१७ में नोटों का प्रचार ६७७३ लाख रुपये से बढ़कर ८६३८ लाख रुपये हो गया और सन् १९१८ मे यह संख्या ९९७६ लाख होगई। इससे यह पता लगेगा कि मार्च सन् १९१४ से से लेकर मार्च १९१८ तक ४ वर्षों में नोटों की संख्या बढ़ कर करीब ड्यौढ़ी होगई। इसके बाद पाठकों को यह विदित ही है कि नवम्बर १९१८ में क्षणिक सन्धि होकर युद्ध खतम हुआ। आश्चर्य होता है कि नोटों का ज़्यादा प्रचार इधर १। वर्ष में ही हुआ है। मार्च १९१८ तक ९९७९ लाख रुपयों के नोट जारी हुए थे कि किन्तु मार्च १९१९ को नोटों की रकम की तादाद १५३४६ लाख होगई यानी एक साल मे ड्यौढी से ज्यादा। ३० नवम्बर १९१९ को कुल जारी हुए नोटों की रकम १७९६७ लाख थी यानी १। बर्ष में करीब दूनी होगई। करन्सी कमेटी की रिपोर्ट से पता लगता है कि ३१ मार्च सन् १९१९ तक २॥) रु. के नोट १८४ लाख रुपये से अधिक के और १) रु. के नोट १०५० लाख रुपये से अधिक के जारी हो चुके थे। जहां सन् १९१४ में १४ करोड़ रु. के प्रामिसरी नोट पेपर करन्सी रिज़र्व में थे वहीं सन् १९१९ में ९९ करोड़ ५३ लाख रुपये के प्रामिसरी नोट थे।

यह हम ऊपर कह ही चुके हैं कि अब गवर्नमेंट ने १२० करोड़ रुपये के प्रामिसरी नोट रखना निश्चय कर लिया है। उसके इस कार्य को करन्सी कमेटी ने भी पसन्द कर लिया है और उसने राय दी है कि १४ करोड़ के समान पक्का कानून बना कर भी १२० करोड़ के नोट रखने की बात मंजूर करा लेनी चाहिये। ऊपर दिये हुए अंकों से यह भी पता लगेगा कि मार्च सन् १९१४ में पेपर करन्सी रिज़र्व में कुल जारी होने वाले नोटों की तादाद पर चांदी और सोना फ़ी सदी ७८·९ था, मार्च सन् १९१९ में ३५·८ था और नवम्बर १९१९ में ४४·६ था। करन्सी कमेटी ने यह राय दी है कि अब जितने नोट जारी हों उनमें करन्सी में ४० की सदी से ज्यादा रोकड़ नहीं रखना चाहिये। किन्तु श्रीयुत् दलाल की राय में ८० फ़ी सदी रखना कुछ भी ज्यादा नहीं है और उन्होंने दिखाया है कि सन् १९१० से लेकर सन् १९१५ तक ७८·२ फ़ी सदी रोकड़ रखने का औसत आता है। हम भी श्रीयुत् दलाल की इस राय का समर्थन करते हैं और चाहते हैं कि लोगों का पूरी तरह विश्वास बनाये रखने के लिये ८९ फी सदी करोड़ जरूर रखना चाहिये। श्रीयुत् दलाल की यह राय भी बहुत ठीक है कि पेपर करन्सी के जो कागज़ लन्दन में रखे हैं उन्हें भुनाकर उसका सोना चांदी मंदा आकर पेपर करन्सी रिज़र्व में जमारहना चहिये। वास्तव में ऐसी शान्ति के समयमें

ऐसे उग्र उपायों का अवलम्ब करना किसी तरह भी ठीक नहीं है। श्रीयुत् दलाल ने लिखा है:—

"It was a case of simply watering the note issue to its worst fate by issuing notes without any metallic backning. In other words, it was a fcrced loan from the Indian Public free of Interest"

अर्थात् "यह तो बुरी से बुरी तरह पानी की तरह नोटों का प्रचार किया गया यानी नोट तो जारी किये गये पर उस के लिये सोना चांदी न रखा गया। दूसरे शब्दोंमे हिन्दुस्तानी लोगो से बिना व्याज ज़बरन कर्ज़ लिया गया।"

श्रीयुत् दलाल के ये शब्द कुछ उग्र अवश्य है पर उनका लिखना यथार्थ ठीक है और उन्होंने जो आशय प्रकट किया है उसका बुद्धि रखने वाले भारतवासी मात्र समर्थन किये बिना न रहेगे। श्रीयुत् दलाल ने अपनी रिपोर्ट में वायसराय के ८ नवम्बर १९१९ के तार का उल्लेख किया है जिसमे उन्होंने लिखा था कि सन् १९१८ में मध्यप्रदेश मे करन्सीनोटो का भाव १९) रु. बंगाल में १५) रु. और बर्मा में १३॥) रु. सैकड़ा बट्टे पर था। और सन १९१९ मे ज्यादा से ज्यादा ३)रु. सैकड़ा बट्टा था। श्रीयुत् दलाल कहते हैं कि यद्यपि बट्टा अब कम होगया है पर इतना अधिक बट्टा होने का लोगों पर स्थाई प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। यह भी ध्यान देने की बात है कि यह नोटों का बट्टा

भिन्न २ प्रान्तों में फैला हुआ था। ऐसी दशा में पेपरकरंसीरिजर्व में इतने अधिक प्रामिसरी नोट और इतनी कम रोकड़ रखने से भारतवासियों का क्या और कहांतक हित होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं। यह हम जानते हैं कि गवर्नमेंट और भारत मंत्री ने जो इरादा कर लिया है, उससे वे तिल भर भी हटने वाले नहीं हैं। पर कौंसिल के मम्बरोंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

हिन्दुस्तानी व्यापार पर आफत

करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का भाव कम से कम २ शिलिंग रखने की जो सम्मति दी है उससे भारतवर्ष के रफ्तनी के व्यापार और यहां की कारीगरी के कामों को तो नुक्सान होगा ही इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं है। एक्सचेंज के इस भाव से विलायत के व्यापारियों को उन चीजों में जो वे हिन्दुस्तान को भेजते हैं पूरा लाभ होगा और उन्हें अनेक प्रकार की सुगमताएं प्राप्त होंगी। एक्सचेंज के इस भाव से विलायत के व्यापार को लाभ होना अवश्यम्भावी है। इस बात को हम और स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। इस लड़ाई के कारण यों तो संसार के सभी देशों में रुपये की पूरी तरह खुश्की होगई है और सब चीजों का भाव तेज़ हो गया है पर जो देश युद्ध में शामिल हुए उनकी दशा बड़ी ही शोचनीय होगई हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर भारत की दशा खराब होने पर भी इतनी खराब नहीं हुई है। करन्सी कमेटी ने चीजों के भाव का एक नक्शा दिया है। सन् १९१० में जो

निर्ख़ था वह १०० मान लिया गया है। यह नकशा इस प्रकार है:—

चीजों के निर्ख़ का नक़्शा।

साल	खाद्य पदार्थों का फुटकर औसत भाव	विलायत से भारत में आई हुई चीज़ों का अधिकतर थोक का औसत भाव	हिन्दुस्तान से विलायत जाने वाली चीजों का अधिकतर थोक का औसत भाव
१९१०	१००	१००	१००
१९११	९६	१०४	१०७
१९१२	११२	१०७	११४
१९१३	११८	१०७	१२१
१९१४	१३२	१०५	१२६
१९१५	१३०	१३४	१२२
१९१६	१२०	२१७	१२८
१९१७	१२०	२४०	१३४
१९१८	१६१	२६५	१५७

इससे यह पता लगेगा कि भारत में खाद्य पदार्थों का भाव सन् १९१४ में १३२ था और १९१८ में १६१ होगया इसी प्रकार विलायत से आई हुई चीजों का भाव सन् १९१४ में १०५ और सन् १९१८ में २६५ था और यहां से विलायत जाने वाली चीजों का भाव १९१४ में १२६ और १९१८ में

२५७ था। और इससे प्रकट होता है कि विलायत से आने वाले माल में अनाप सनाप तेजी होगई है। तेजी तो जाने वाले माल में भी हुई है पर आने वाला माल तो बहुत तेज होगया है। यदि एक्सचेंज का भाव वही पुराना १ शि० ४ पें० का हो तो विलायत से हिन्दुस्तान माल आना कठिन और एक प्रकार से असंभव सा होजायगा। क्योंकि माल आकर बहुत तेज पड़ेगा और भेजने वालों को घाटा होगी। करन्सी कमेटी ने सूती कपड़े का भाव भी विशेष रूप से दिया है :—

भारत का सूती कपड़ा।

सन् १९००–९	१९१४	१९१५–१७	१९१८–१९
१००	१०९	९४	१६४

विलायत से आया सूती कपड़ा

सन् १९००–९	१९१४	१९१५–१७	१९१८–१९
१००	११२	१३८	२०६

अब यदि और चीजों का ख्याल न करके कपड़े का भाव लिया जाये तो विलायती कपड़ा देशी कपड़े से बहुत तेज आकर पड़ेगा। मान लीजिये इस समय एक्सचेंज का भाव २ शि० ८ पेंस है। पहले जो १ शि० ४ पें० का भाव था उसका यह दूना हुआ। पहले जो कपड़ा १) रु० में बिकता था यदि इस समय ।।) आने को वेचा जाय उस समय तक बेचने वाले को पहले

के समान ही दाम मिलेंगे । बेचने वाले को विलायत में जिस कपड़े के जो दाम मिलते थे उससे ज्यादा मिलेंगे और यहां खरीददार को भी सस्ता पड़ेगा । इस प्रकार मामूली तौर पर यद्यपि यह भारत वासियों के लिये ऊपर से देखने में अच्छी मालूम होती है पर इससे भारत के व्यापार का तो बहुत कुछ नाश हो जायेगा । इस बात को करन्सी कमेटी ने भी स्वीकार किया है कि एक्सचेंज का इतना ऊँचा भाव रहने से विलायत के तिज़ारत को लाभ होगा और हिन्दुस्तान की तिज़ारत को कुछ हानि होना भी संभव है पर और २ बातों में फुसला कर उसने भारतवासियों के आंसू पोंछने का यत्न किया है। पाठक और स्पष्टरूप से समझें। विलायत से एक तरह का कपड़ा आता है। उसी तरह का कपड़ा हिन्दुस्तान का बना भी ले लीजिए। मान लीजिये पुराने एक्सचेंज के भाव में उस विलायती कपड़े का भाव २) रु. और हिन्दुस्तानी कपड़े का भाव १॥) रु० था। जब ठीक वैसा ही माल १॥) रु. में मिलेगा तो २) रु. कौन देगा। पर एक्सचेंज की कल जरा इधर से उधर घुमादेने से विलायत वाले अब कपड़ा १) रु. में बेंच सकते हैं यानी देशी से भी सस्ता बेंच सकते हैं और नुक्सान की जगह फायदा ही उठा सकते हैं । देशी व्यापारियों और कारीगरों को अपने माल के दाम कमतो मिलें हीं गे पर विलायत जाने वाली रुई, जूट आदि चीजों का भाव भी एक दम से गिर

जायगा और हमारा माल बाहर जाना बंद हो जायगा। यद्यपि विदेशियों को हमारा माल यहां सस्ता पड़ेगा पर इस एक्सचेंज की माया से उन्हें विलायत में दाम ज्यादा देना पड़ेगा। पुराने एक्सचेंज के भाव में हमें जिस माल का १) रु. यहां मिलता उसका उन्हें १ शि० ४ पेंस वहां देना पड़ता था पर अब जिस माल का यहां १) रु. भाव होगा उसका उन्हें विलायत में २ शि० ८ पेंस देना पड़ेगा। यानी हमारे माल के दाम यहां हमें तो पहले से कम मिलेंगे और विलायत वालों को ज्यादा देने पड़ेंगे। जब विलायत वालों को हमारा माल ज्यादा तेज पड़ेगा तो वे हमारा माल क्यों मोल लेने लगे? इस तरह व्यापारिक दृष्टि से हमारे माल की यहां भी मिट्टी खराब और वहां भी खराब। यह जरूर है कि भारत की इस शोचनीय दशा में यदि आवश्यक पदार्थों का भाव जितना ही कम रहे उतना ही अच्छा पर यदि भारतवर्ष आज तक भी इस प्रतिद्वन्द्वता के जमाने में इस कुटिलता पूर्ण यूरोपीयसभ्यता के धोखे में आकर इसी नीति को धर्म पूर्ण समझता रहा तो यही कहना पड़ेगा कि व्यापारिक दृष्टि से भारत वर्ष का शीघ्र ही अधः पतन होने वाला है और साथ ही यहां का रहा सहा धन भी ढुल कर विलायत चला जायेगा।

एक्सचेंज का भाव (रेट)

करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का भाव इस दृष्टि से विचार कर निश्चित किया है कि हिन्दुस्तान में बराबर चांदी के सिक्के का

ही व्यवहार रखा जाय और कभी जरूरत पड़े तो थोड़ा बहुत सोने के सिक्के से भी काम ले लिया जाय। यह सोने के सिक्के की जरूरत इसलिये बताई गई है कि विदेशों से लेन देन सोने ही के द्वारा होता है और विदेशों को सोने के सिक्के की बराबर जरूरत पड़ती है। करन्सी कमेटी कहती है कि लोगों के पास सोना रहने से नुकसान ही होता है। भारतवर्ष के हित के लिये सोना अधिकतर सरकारी खजाने में ही रहना जरूरी है। सन् १८१९ से पहले यहां चांदी का ही सिक्का जारी था। सन् १८-९३ मे हरशल कमेटी की सम्मति के अनुसार रुपया ढालना बंद हुआ और सोने का सिक्का जारी हुआ। पहले एक्सचेंज का भाव १३ पेंस था और गिन्नियों के प्रचार व रुपये की कमी से वह भाव धीरे २ बढ़कर सन् १८९९ मे १६ पेंस यानी १ शि० ४ पेंस हो गया। तब से यही भाव जारी रहा सन् १८९७ मे फाउलर कमीशन जांच करने के लिये बैठा उसने राय दी कि भारतवर्ष में मुख्य रूप से सोने का ही सिक्का चलना चाहिये और पूरी तरह यहां सोने की टकसाल खुलनी चाहिये और केवल मदद देने के लिये चांदी का सिक्का भी रहे। हरशल कमेटी ने जिस प्रकार सोने के सिक्के के प्रचार की सम्मति दी वह "गोल्ड एक्सचेंज स्टेंडर्ड" प्रणाली कही जाती है और फाउलर कमेटी ने जिस प्रकार सोने के सिक्के के प्रचार की सम्मति दी वह 'गोल्ड स्टेंडर्ड' प्रणाली कही जाती है। पहली प्रणाली विलायती व्या-पार के लाभ के लिये नाम मात्र सोने के सिक्के का भारतवर्ष

में प्रचार करना चाहती है और दूसरी प्रणाली इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका जैसे देशों के समान पूरी तरह शुद्ध रूप से सोने के सिक्के का प्रचार करना चाहती है। फाउलर कमेटी की राय को भारतसरकार और प्रान्तीय सरकारों ने पसंद किया। अधिकांश शिक्षित भारतवासियों ने भी फाउलर कमीशन के मत का समर्थन किया। पर सन् १९१४ में चेम्बरलेन कमीशन ने राय दी कि चाहे कभी २ सोने का सिक्का भी ढाल लिया जाय पर पूरी तरह यहां सोने की टकसाल नहीं रहनी चाहिये और एक्सचेंज के काम के लिये यहां 'गोल्ड एक्सचेंज स्टैंडर्ड' प्रणाली ही रहनी चाहिये। लड़ाई के कारण चेम्बरलेन कमीशन की राय पर विचार नहीं किया गया। इस युद्ध में संसार की अन्य देशों की करंसी के समान भारतवर्ष को भी अनेक कष्ट उठाने पड़े। अब इधर ३० मई १९१८ को भारत मन्त्री मि० मांटेगू ने यह

नई करन्सी कमेटी

फिर से सब मामलों पर विचार करने के लिये सर हेनरी बेबिंगटन के सभापतित्व में नियत की। इस कमेटी के कुल ११ मेम्बरों में १० अंग्रेज और १ भारतीय मेम्बर थे। इस कमेटी की सब बैठकें लंदन ही में हुईं। करन्सी कमेटी के हिन्दुस्तानी सदस्य श्रीयुत् दलाल ने जो राय दी है उससे प्रायः हम समझते हैं। भारत के हित के लिये वह आवश्यक है कि वही १६ पेंस यानी १ शि० ४ पें. का भाव रखा जाये। यह हम मानते हैं कि चांदी का भाव इतना अधिक तेज हो जाने से बड़ी कठिनाई

उपस्थित होगई है। यदि थोड़े ही काल के लिये भारत के हित पर पूरी तरह दृष्टि रखते हुये इस एक्सचेंज के रेट को बढ़ाना भी उचित समझा जाय तो भी हम उसका समर्थन करने के लिये तैयार हैं पर हमेशा के लिये स्वेच्छा पूर्वक इस कार्य के करने का हम पूर्ण प्रतिवाद करते हैं। करन्सी कमेटी से एक्स-चेंज के रेट को निश्चितता का रूप देने के लिये कहा गया था। उसने एक्सचेंज के भाव को ऐसी अनिश्चितता प्रदान की है जो

एक्सचेंज के इतिहास।

में कभी नहीं हुई। हम पाठकों को स्पष्ट रूप से समझायेंगे। पहले सोने की गिन्नी और पौंड के नोट का भाव बराबर था इसलिये एक्सचेंज का भाव जो १६ पेंस था वह नोटों ही में था पर यह २ शि० का भाव नोटों में नहीं सोने में है। इस समय इस पौंड नोट और गिन्नी में बड़ा फ़र्क़ है। ८ मार्च सन् १९२० को लंदन में सोने का भाव ११५ शि० ६ पेंस फ़ी औंस था। एक औंस में ४८० ग्रेन होते हैं और एक गिन्नी में ११३ ग्रेन सोना लगता है। १०० औंस सोने में ४२५ गिन्नियां बनती हैं। इस प्रकार १०० औंस के दाम ५७७ पौंड १० शि० हुये यानी एक पौंड नोट का मूल्य सोने का ·७३ गिन्नी के बराबर हुआ यानी कागज पौंड का भाव सोने की गिन्नी से २७ फ़ी सदी कम रहा और सोने की १ गिन्नी का दाम १·३५ पौंड नोट के बराबर हुआ यानी पौंड नोट से गिन्नी

का मूल्य ३५ फ़ी सदी ज्यादा रहा। इस समय अमरीका ही में सोने का लेन देन है और सब जगह कागजी घोड़े ही दौड़ते हैं और भारतीय एक्सचेंज का भी अमरीका के साथ गठजोड़ा कर दिया गया है। इस समय एक्सचेंज की जैसी स्थिति हो रही है उसका भी कुछ दिग्दर्शन करा देना उचित होगा। इसके पूर्व कि इस सम्बन्ध में हम कुछ लिखने का प्रयत्न करें, पाठकों को हिन्दुस्तान और विलायत की सरकारी हुण्डियों के विषय में जानकारी हासिल कर लेनी चाहिये। सबसे पहले 'होम-चार्जेज' शब्द को जान लेना चाहिये। होम चार्जेज रुपयों की वह तादाद है जो भारतसरकार प्रति वर्ष इंग्लैंड को देती है। भारत सचिवके दफ्तर आदि का व्यय, विलायती साहूकारों के हिन्दुस्तान में काम में लगे हुए रुपयोंका सूद, भारतीय सरकारके फ़ौजी या सिविल कर्मचारियों का वेतन पेन्शन आदि २ कुल मिला कर ३७½ करोड़ रुपये इंग्लैंड भेजना पड़ते हैं। किन्तु यह रुपया जैसा कि बहुतेरे पाठक अनुमान कर लेंगे जहाजों में लाद कर इंग्लैंड नहीं भेजा जाता। यह रुपया इस प्रकार दिया जाता है कि भारत मन्त्री विलायत में हिन्दुस्तान की सरकार के नाम हुण्डियां बेंचते हैं। विलायत के व्यापारी इन हुण्डियों को खरीद कर भुगतानके लिये उन्हें भारत के व्यापारियों के पास भेजते हैं और भारत सरकार इन्हें हुण्डी का रुपया चुका देती है। इस प्रकार विना किसी कष्ट के एक दूसरे की भरपाई हो जाती है। इन्हीं हुण्डियों को कौन्सिल बिल या कौन्सल ड्राफ्ट कहते हैं। अब यह जानना चाहिये कि ये

हुण्डियां किस भाव बिकती हैं। जिस समय एक्सचेंज का भाव अर्थात् रुपये और पौंड का विनिमय १ शि० ४ पेन्स के हिसाब से था तब हुण्डियां १ शि० ३ $\frac{२९}{३२}$ पेंस से १ $\frac{१}{२}$ पेंस तक बिकती थीं अर्थात् रुपये का भाव उस समय १६ पेंस हुआ। महायुद्ध के पूर्व, यही भाव था पर युद्ध के कारण बहुत कुछ परिवर्तन हुआ इधर चांदी का भाव भी बढ़ गया। एक्सचेंज का भाव (रेट) भी बढ़ गया। अस्तु; भारतमन्त्री प्रति सप्ताह ये हुण्डियां बेचते हैं। इन हुण्डियों के भाव के सम्बन्ध मे केवल यह ध्यान रखा जाता है कि इनका भाव इतना तेज न होने पाए कि विलायती व्यापारियों को हुण्डियां खरीदने की अपेक्षा सोना चांदी ही भारत में भेजने में विशेष लाभ हो। क्योंकि जब व्यापारियों को इस कार्य में हुण्डियों से अधिक सुविधा होगी तो हुण्डियों के खरीदने में लाभ ही कौनसा होगा?

अब एक्सचेंज का भाव तेज क्यों होता है, यह भी संक्षेप में जान लेना चाहिये। व्यापार में यह एक साधारण सिद्धान्त है कि आवश्यकता की अधिकता और वस्तु की विशेष उपयोगिता से उसका मूल्य बढ़ जाता है। जब विलायत के व्यापारियों को भारत में अधिक रुपया भेजना होता है तो हुण्डियों की मांग सहज बढ़ जाती है और इसी से उनका भाव तेज हो जाता। इस तेजी से व्यापारियों को हानि और भारत मन्त्री को लाभ होता है। और भाव मद्दा होने से भारत मन्त्री को हानि और व्यापारियों को लाभ होता है।

यह तो हुआ कौन्सल ड्राफ्ट या विलायती हुण्डियों के बारे में अब 'रिवर्स कौन्सल' यानी भारतीय हुण्डियों के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक है। इन हुण्डियों को भारत सरकार हिन्दुस्तान के व्यापारियों को भारत मन्त्री पर बेचती है। जिस समय एक्सचेंज का भाव गिरता है अर्थात् विनिमय की दर घट जाती है भारत सरकार को इन हुण्डियों के बेंचने में लाभ है पर भाव तेज होजाता है तो भारत सरकार को हानि उठानी पड़ती हैं। किन्तु ये हुण्डियां भारत सरकार भारत मन्त्री की आज्ञा बिना नहीं बेंच सकती, क्योंकि भारत मन्त्री तो अपनी वार्षिक व्यय वसूल करने के लिये अपने यहां की हुण्डियां बेंचने के लिए बाध्य हैं। पर भारत को वैसी कुछ आवश्यकता नहीं। उसका हुण्डियां बेचना तो केवल पौंड के भाव को स्थिर कर देने के लिये है। करेन्सी कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत सरकार १० रु० का पौंड निश्चय कर चुकी है अतः यह विचारणीय है कि इस समय भारत सरकार को रिवर्स कौंसिल बेंचने में लाभ है या हानि साथ ही भारत मन्त्री को भी अपनी हुण्डियां बेंचनी चाहिये या नहीं। इसमे भारत मन्त्री की अर्थात् विलायती हुण्डियों के बेचने से हम भारत के लिये कोई हानि नहीं देखते। पर भारत सरकार को 'रिवर्स कौंसिल' बेंचने में हानि है और शायद इसीलिए भारत सरकार ने यह प्रकट किया है कि अब से प्रति सप्ताह रिवर्सकौन्सिल का बेंचना बंद किया जाता है साथ ही यह भी विश्वास दिलाया है कि वह आव-

श्यकता पड़ने पर फिर उन्हें बेंच सकेगी। हम पूंछते हैं कि जनता के विरोध करते रहने पर भी भारत सरकार ने अब तक उन्हें बेंच कर कौन सा लाभ उठाया? हमें यह बतलाया गया है कि भारतीय नोटों में बहुत न्यूनता हो गई है। भारत सचिव भारतीय हुण्डियों पर ट्रेज़री बिल उलट कर भेज देते थे। परन्तु विनिमय को स्थिर रखने के लिये भारत सरकार का उद्देश्य क्या इससे सफल हो गया? सरकार के इस कथन में हमें कोई सार नहीं प्रतीत होता कि भारतीय हुण्डियों के भुगतान का अन्य कोई उपाय न था।

ज्यों ही भारत सरकार ने रिवर्स कौन्सिल बेंचना बन्द कर दिया त्यों ही एक्सचेंज का भाव एक दम गिर गया। जिस कारण व्यापारिक संसार बड़ा क्षुब्ध हो गया। इस सम्बन्ध में विरोध और प्रतिरोध इतने अधिक हैं और विचार इतने अधिक और जटिल हैं कि यह निश्चय करना कठिन है कि वास्तविक बात क्या है? प्रत्येक व्यक्ति अपने भिन्न विचार प्रकट कर रहा है। यूरोपियन चेम्बरर्स आफ़कामर्स रिवर्स कौन्सिल फिर से २ शि० के भाव से बेंचने के लिये चिल्ला रहे हैं और भारतीय चेम्बर्स आफ़कामर्स उसका विरोध कर रहे हैं। रिवर्स कौन्सलस् को केवल भारतीय आयात और निर्यात से ही सम्बन्धन जानना चाहिये अपितु भारत की आर्थिक और मुद्रा अवस्था से भी उसका बहुत सम्बन्ध है। रिवर्स कौन्सल्स भारत के लिये सर्वकालीन नहीं है।

वे उसी समय बेंचे जाते हैं जब भारतीय व्यापार का अवशेष अर्थात् बाक़ी भारत के प्रतिकूल हो। इसके लिये लार्ड कर्जन के समय में एक अतिरिक्त कोष कायम हुआ था और जो लंदन में रखा गया था। साधारण रूप से भारतीय व्यापार का अवशिष्ट यानी बक़ाया भारत के अनुकूल रहता है अतएव यह कहना बिल्कुल व्यर्थ और प्रमाद पूर्ण है कि कौन्सलों का विक्रय निरन्तर जारी रहे। इनके बेंचने से देश को बड़ी हानि हुई है और इनसे विनिमय को निरन्तर स्थित रखने में बिल्कुल सहायता नहीं मिली। इन बिलों के सम्बन्ध में कतिपय अर्थशास्त्रज्ञों और बैंकों ने जो भाग लिया वह अवश्य ही दुर्भाग्य का विषय है। इन कौन्सलों से विनमय के स्थिर रखने में कुछ भी सहायता नहीं मिली और भारत सरकार को भी अपनी भूल मालूम हो गई है। विनिमय का भाव अपना स्वतन्त्र मार्ग खोज रहा है और रुपये का प्रचलन सुदृढ़ हो रहा है; यह स्वाभाविक ही है। व्यापार के पुनर्संगठन से बिलों का विक्रय परिमित होना आवश्यक ही है और इसी से एक्सचेंज का गिरना अनिवार्य है। इसी बीच में भारत में माल भेजने वालों को, यदि उनने यूरोपीय सिक्कों में मोल लिया है, बड़ी हानि होगी। अस्तु;

हम आशा करते हैं कि सरकार भारत को और अधिक एक्सचेंज की प्रयोगशाला न बनायेगी। साथ ही हम यह भी विश्वास करते हैं कि एक्सचेंज कृत्रिमता पूर्वक कम

नहीं रखना चाहिये। जब तक एक्सचेंज के प्रबन्ध में इस प्रकार की कृत्रिमता है तबतक वह निंदार्ह है । भारतीय उद्योगों का इससे अधिक और भी अधिकार है । उन्हें एक्सचेज के पल्ले इस प्रकार न पटक देना चाहिये । उनकी सहायता का और अच्छा सुगम. सुस्पष्ट और नियमित द्वार होना चाहिये। आयात और निर्यात को नियमों के बन्धन में डाल देना बड़ी भारी मूर्खताहै और सरकारको यह उपाय कदापि न करना चाहिये। अनेक विघ्न बाधाओं के होते हुए भी एक्सचेंज का सिद्धान्त अब तक वैसा ही गम्भीर और निश्चित है और आशा है वह वैसा ही बना रहेगा।

इसके उपरान्त दो एक बातें और कहनी हैं। एक तो यही है कि भारत में एक्सचेज भाव भिन्न २ नगरों में स्थिर नहीं हैं। यहां तक कि बम्बई में भी नहीं है । बम्बई में जब एक्सचेंज १ शि. ६–६–१६ पेंस था तो मद्रास में १–६ पेंस था। दूसरे बी० सी० और ड्राफ्ट में बहुत अन्तर है। और इससे कतिपय भारतीय बैंकों का कुप्रबन्ध प्रकट होता है।

दस रुपये की गिन्नी।

सरकार ने गिन्नी का भाव १५) रु० के स्थान १०) रु० कर देने की घोषणा की है। हमारी दृष्टि से इतने दिन से निश्चित किये हुए इस रेट को तोड़ना ठीक नहीं है। श्रीयुत् दलाल ने राय दी है कि लोगों को गिन्नियोंमें जो घाटा हो उसे गवर्नमेन्ट दे।

पर अब इस अवस्था में लोगों को यह विश्वास होना कठिन है कि भविष्य में सरकार और सिक्कों के साथ ऐसा बर्ताव न करेगी। दस रुपये की गिन्नी से अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी दोनों दलों को हानि लाभ है पर अधिकांश में हानि भारतीय जनता के पल्ले पड़ी है। पाठकों के सुभीते के लिये हम इस विशय को और स्पष्टता से समझाने का प्रयत्न करते हैं, जिससे उन्हें विदित होगा कि दस रुपये की गिन्नी हो जाने से व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।

१—दस रुपये की गिनी से लाभ उठाने वाला दल—

(१) अंग्रेज नौकर

(२) अंग्रेज पूंजीपति

(३) इंग्लैंड के कारखाने वाले

(४) पदार्थों का प्रयोग करने वाली न कि उत्पन्न करने वाली भारतीय जनता।

२—हानि उठाने वाला दल—

(५) खेती का काम करने वाले कृषक लोग

(६) कच्चा माल भेजने वाले भारतीय व्यापारी

(७) कारखानों के मालिक तथा मेहनती मज़दूर लोग

(८) नयी मिलों के खोलने वाले

१—लाभ उठाने वाला दल—

१—**अंग्रेज नौकर**:—दस रुपये की गिन्नी करने में वायसराय से लेकर छोटे से छोटे अंग्रेज का मासिक वेतन विनिमय की दर के कारण ड्यौढ़ा हो जायगा। १५०० रु० मासिक वेतन पाने वाले अंग्रेजों को अब १०० गिन्नी (अर्थात् १५ रु०=१ गिन्नी) के स्थान पर १५०) गिन्नी ($\frac{१५००}{१०}$=१५० मिलेंगी।

(२) **अंग्रेज पूंजीपति**:— अंग्रेज नौकरों के सदृश ही भारत के पूंजीपतियों का भी हित दश रुपये की गिन्नी में है। लड़ाई के दिनों में जो धन उन्होंने कमाया उस धन को वे अब बड़ी आसानी के साथ इंग्लैंड में भेज सकते हैं। दस रुपये की गिन्नी से अब गिन्नी में उनकी आमदनी ड्यौढ़ी हो जायगी। यदि वे अपना धन इंग्लैंड की कम्पनियों में लगावें तो उन्हें उसमें ५० फ़ी सैकड़ा अधिक धन मिलेगा।

(३) **इंग्लैंड के कारखाने वाले**:—इंग्लैंड के मैन्चेस्टर पैस्ले तथा अन्य व्यवसायिक ज़िलों का लाभ इसीमें है कि दस रुपये की गिन्नी हो जाय। क्योंकि इससे उनका माल अनायास ही भारत के अन्दर सस्ता बिकेगा। जो कपड़ा वे एक गिन्नी का भेजेंगे—अब वह १५) रु० के स्थान पर १०) रु० का ही बिकेगा। इससे उनके पदार्थों की मांग बढ़ेगी। हिन्दुस्तान के कारखाने उनका मुकाबिला न कर सकेंगे। क्योंकि विदेशियोंकी चीजें अनायास ही सस्ती हो जायेंगी।

(४) भारतीय जनता:—भारतीय जनता को यह लाभ है कि उसको विदेशीय कारखानो का माल ३३ फी सैकड़ा सस्ता मिलेगा और अन्न के बाहर जाने में रोक होने से अन्न भी बहुत मँहगा न हो सकेगा। यूरोप में भोज्य पदार्थ बहुत मँहगे हैं। दृष्टांत स्वरूप भिन्न २ देशों के भोज्य पदार्थों की कीमत का लेखा इस प्रकार है। इसमें आधार वर्ष १९१३ रखा गया है:—

देश	लेखा	मास १९१९
फ्रांस	३३०·०	जून "
इटली	३२९·९	अप्रैल "
जापान	२१४·०	मई "
स्वीडन	३३६·०	अप्रैल "
इंग्लैंड	२५७·२	अगस्त "
अमेरिका	२०६·०	मई "

दस रुपये की गिन्नी हो जाने से एक रुपया स्वर्ण में २ शि. और स्टार्लिंग में २ शि: ६ पेंस के बराबर होता है। १९१३ में १०० पौंड को जो माल आता था उसका दस रुपये की गिन्नी होने से आजकल ८०० रु० दाम हुआ; परन्तु यदि १५) रु० की गिन्नी हो तो इसी का दाम १५०० हुआ। इसी प्रकार १०) रु० की गिन्नी होने से भारत का कच्चा माल विदेश में भेजने वालों को १५००)–८००)=७०० रुपयों का प्रति १०० गिन्नी पीछे नुक़सान हुआ। यह तो मोटा हिसाब हुआ। यदि माल भेजने आदि का खर्च भी बीच में जोड़ लिया जाय तो भी ५५७) रुपये

से अधिक ही नुक़सान बैठता है। स्वाभाविक बात है कि भारत का कच्चा माल विदेश में कम जायेगा और इसीलिये उपर लिखित देशों के सदृष ही भारत में भोज्य तथा प्रयोग पदार्थों की क़ीमतें न चढ़ेंगी। भारतीय जनता को जो कि पदार्थों को उत्पन्न कर प्रयोग ही करती है इससे विशेष लाभ है। भारत में ७० प्रति सैकड़ा लोग खेती का काम करते हैं। कृषिजन्य पदार्थों के सस्ते होने से उनके व्यवसायमें लाभ न रहेगा। अन्य लोग जो कि व्यवसायिक पदार्थों को बनाते हैं उनको भी इससे विशेष लाभ नहीं है। इस प्रकार लाभ केवल उन्हीं को है जो सरकार की नौकरी करते हैं या अन्य नैयत्तिक काम धन्धों में नौकरी कर निर्वाह करते हैं।

२ हानि उठाने वाला दल

(५) **खेती का काम करने वाले कृषक लोग**—लड़ाई के दिनों में अनाज के मँहगे होने से पंजाब के ज़िमींदारों ने बहुत अधिक धन कमाया। अनाज का मँहगा होना कुछ भी अच्छा नहीं है। परन्तु बिना मँहगी के कृषकों को सहारा नहीं रहा है। बंगाल में स्थिर लगान नियत करते समय सरकार ने ९० फी सदी उत्पत्ति मालगुजारी में ले ली थी। यदि महँगी न होती तो बंगाली ज़िमीदार कभी के बरबाद हो जाते। दुख का विषय तो यह है कि सरकार मँहगी को स्थिर समझ कर रेल का किराया, राज्य कर तथा मालगुजारी बढ़ाती जाती है। इस दशा में किसान लोगों के लिए सस्तापन कैसे हित कर हो सकता है। महँगी को देख

कर ही उन्होंने रद्दी से रद्दी जमीनों को जोत डाला है और जो चीजे अधिक महँगी थीं उन्हीं को बोया है। क्या अब, वे सहसा ही उन पदार्थों के भावों का गिरना पसंद कर सकते हैं? इतना ही नहीं, इसी मँहगी को आधार बनाकर सरकार ने अपने कर्मचारियों की तनख़्वाहें ड्योढ़ी कर दी गईं।

(६) कच्चा माल भेजने वाले भारतीय व्यापारी:— यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि १०) रु० की गिन्नी होने से विदेश में कच्चा माल भेजना लाभ प्रद व्यवसाय न होगा विदेश में कच्चा माल भेजने वाले व्यापारियों का कारोबार बंद हो जायेगा। भारत को यह काफ़ी नुक्सान है। क्योंकि इन्हीं व्यापारियों के द्वारा ही भारत को विदेशियों का धन मिलता है।

(७) कारख़ाने के मालिक तथा मेहनती मज़दूर लोगः— लड़ाई बंद होने के बाद भारतीय मेहनतियों तथा मजदूरोंने अपना वेतन बढ़वा लिया है। कारखाने वालों को यह विशेष रूप से फला नहीं। क्योंकि विदेशी चीजों के महँगे होने से उनके कारखाने आमदनी पर चल रहे थे। दस रुपये की गिन्नी होते ही विदेशियों की चीजें ३३ फी सैकड़ा दाम में गिर जायेंगी। स्वदेशीय कारखानें विदेशीय कारखानों का मुक़ाबला करने में असमर्थ हो जायेंगे। बहुतों को अपने कारखानें बंद करना पड़ेंगे। परिणाम इसका यह होगा कि मेहनती मजदूर लोग बेकार फिरेंगे।

(८) नयी मिलों के खोलने वाले:—१०) रु० की गिन्नी से जब पुरानी मिलों को भयंकर धक्का पहुँचेगा तो नई मिलों का खुलना तो कोसों दूर हो जायेगा।

इस प्रकार एक्सचेंज की स्थिति इन दिनों अनिश्चित सी हो रही है। सरकार ने भी अब एक्सचेंज को भाग्य पर छोड़ दिया है। अधिकारियों का कथन है कि उनने ५ करोड़ के रिवर्स-कौनसलस् बेंच कर एक्सचेंज स्थिर करने का प्रयत्न किया; किन्तु उन्हें निराश होना पड़ा। ये पाँच करोड़ हिन्दुस्तान ने ७५ करोड़ में लिये थे। भारत सरकार ने धनी एंग्लो इण्डियनों, बैकरों और पूंजी वालों को आधी क़ीमत अर्थात् ७ रु० ८ आ० प्रति सावरिन में, भारत ने जिसके लिये १५) रु० दिये थे, माल लेने के लिये आमन्त्रित किया। यह स्वीकार किया गया और इसका जो कुछ परिणाम हुआ उसका वर्णन उस समय इस प्रकार किया गया था:—"सरकार ने ३५ पें० से भाव से रिवर्स कौंसल बेंचकर यह परिणाम प्रकट किया कि लोग इस ज़बर-दस्त भाव पर रुपया फेरने के लिये चिंतित हो उठे। इंग्लैंड ने भारत में ६ या ७ सौ करोड़ रुपये पूंजी में लगाये हैं अतएव रुपया फेरने के लिये इतनी उत्तेजना फैली है और इतनी अधिकता हो रही है कि सरकार के पैर फिसल जाने का भयहै।" किन्तु यह जान कर हमें संतोष हुआ है कि सरकार ने अब अपनी भूल स्वीकार कर ली है जिसके कारण कृषकों तथा रफ्तनी के व्या-

पारियों की गहरी हानि के अतिरिक्त कोष को ८ ही महिने में ३५ करोड़ का धक्का लगा ।

टकसालों का बंद होना ।

हम नहीं जानते कि लोग टकसालों के बंद हो जाने से क्या तात्पर्य निकालते हैं । हमें भय है कि अंग्रेज और भारतीय भी इसके समझने में भूल कर रहे हैं । हम देखते है कि टकसाल बंद होने के एक वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८९२ मे आठ सहस्र अंग्रेजों और इतने ही शिक्षित भारतियों ने सरकार से टकसाल बंद करने के लिये कहा था; क्योंकि उनकी दृष्टि में टकसालें बंद न होने से होमचार्जेज़ के कारण भारत का सर्वनाश हो जाता । कुछ समय हुआ श्रीयुत् बेच ने अपने एक लेख में लिखा था की एक्सचेंज की बढती से भारत को होमचार्जेज़ देने मे बहुत रुपया बच रहेगा और भारतीय व्यापार में भी २ शि० प्रति रुपया की अभिवृद्धि होगी । अर्थ साचिव श्रीयुत् हेली ने भी उस समय यही बात कही थी, और हमें विश्वास है कि हममे से अधिकांश लोग भी यही समझते है । एक्सचेंज का भाव चाहे १ शि० हो या २ शि० अथवा चाहे जो हो उससे होमचार्जेज में कुछ भी बचत न होगी यही नहीं चाहे जो कारण हो यदि सोने के रूप में उसे देना हो तो उसमें भी अन्तर न पड़ेगा । इस सम्बन्ध में हम श्रीयुत् गिफिन की सम्मति देदेना आवश्यक समझते हैं । श्रीयुत् गिफिन ने फाउलर कमेटी के सम्मुख कहा

था:—— "जहां तक भारतीय जनता से सम्बन्ध है तब तक उनका द्रव्य चाहे कुछ हो लंदन में देने के लिये सोना उतना ही है। सोने के ऋण के सम्बन्ध में, जैसा कि भारत को देना पड़ता है, क्या भारत की अथवा उस जैसे देश की अवस्था में उस देश के प्रति सम्बन्ध में कुछ अन्तर पड़ जाता है जहां सोने का सिक्का प्रचलित है? हम देखते हैं कि सरकार कुछ बिचलित हो गई है पर द्रव्य के मूल्य में परिवर्तन हो जाने से क्या सरकार के ऊपर यह कुछ ज्यादा भार है? आस्ट्रेलिया का सोने का ऋण तो कहीं इससे अधिक है।"

विदेशीय स्वर्ण ऋण।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि एक्सचेंज की बढ़ती से यह मानलेना, कि विदेशी ऋण सस्ते में चुक जायगा, भूल है। यदि हमें इंग्लैंड को प्रति वर्ष २ करोड़ पौंड देना है तो हमें इंग्लैंड या दूसरे स्थानों में उपज का एक अंश भेजना पड़ेगा जिसके द्वारा २ करोड़ पौंड प्राप्त हो सकेंगे। इस में हम सरकार की कुछ बचत देखते हैं पर यह बचत अप्रत्यक्ष कर की वृद्धि के कारण हुई है। रुपये की दर १ शि० ४ पें० निश्चित्त थी; सरकार ने २ शि० ११ पें० तक बढ़ा दी अर्थात् पूर्णांक में २ शि० ८ पें० बढ़ा दी। परिणाम क्या होगा? भारत का कर एकदम दूना हो गया!

विदेशी ग्राहक ।

मानलो कि उत्पादक को १ रु० जमीन का लगान देना पड़ता है। उसने विदेशी पैदावार का कुछ अंश बेंच दिया और अपना कर्ज अदा कर दिया जब कि रुपये की दर १ शि० ४ पें० थी। अब आप १ शि० ४ पें० के स्थान पर २ शि० ८ पें० ले लीजिये। २ शि० ८ पें० होते ही उसे पहले से दूना देना पड़ता है। आप कह सकते हैं कि वह उसे देना स्वीकार न करेगा। वह ऊंची दर के लिए बैठा रहेगा। पर वह बहुत समय तक ऐसा नहीं कर सकता। भारत के कपास के कौन दूने दाम देदेगा जब कि अमेरिका जैसे देशों के लोग अपने यहां अधिक उत्पादन द्वारा उसकी कीमत नियमित कर रहे है? अतएव विदेशी ग्राहक हमारा माल तो खरीदेगा नहीं और अन्य देशों से इच्छित वस्तु मोल लेलेगा। यह कहना व्यर्थ है, केवल दुराशा मात्र है कि हम चाहे जो क़ीमत ले सकते हैं। हमें अपनी कच्ची पैदावार पर जूट और चाय के सिवा और किसी पर संरक्षित अधिकार नहीं है। और तब भी कृपकों को बड़ा कठोर श्रम करना पड़ता है। इस का कोई उदाहरण देने के पूर्व हम एक सुप्रसिद्ध व्यापारी श्रीयुत् राली की सम्मति देते हैं। सन् १८९८ मे करन्सी कमेटी के संमुख उस के प्रश्न का उत्तर देते हुये श्रीयुत् राली ने कहा था कि एक्सचेंज की बढ़ती दर भारतीय कृषि और व्यापार की उन्नति में अवश्य बाधक होगी। उन ने स्पस्ट रूप से

कह दिया था कि यह मेरा विचार है और उसे कोई बदल नहीं सकता कि एक्सचेंज की ऊंची दर भारतीय कृषि और व्यापार की अवरोधक है। यह बात हमारी गवर्नमेंट को भी मालूम थी। उसने सन् १८९७ में एक गुप्त पत्र में भारत मन्त्री को लिखा था:——

"भारत के सच्चे हित के ख़याल से यह आवश्यक है कि एक्सचेञ्ज को स्थिर करने के लिये १६ पेंस अधिक रुपये की क़ीमत न होनी चाहिये। यदि किसी प्रकार भी रुपये की दर इससे ऊँची हो जायेगी तो इससे विशेष भय की संभावना है।" फ़ाउलर कमेटी की रिपोर्ट में इसका उल्लेख आपको मिलेगा। अब हमें निर्यात की दो मुख्य चीजों अर्थात् जूट और चाय के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये। जूट की पैदा पर बड़ी बुरी दशा रही है। उसके पैदा करने वालों को बड़ी दुरवस्था रही है। उनके पास भोजन तक नहीं। जूट के पैदा करने वालों की अवस्था बहुत बिगड़ गई है। गत् महा युद्ध के चार वर्षों में जूट मिलों को ५० करोड़ से अधिक लाभ हुआ। जिस मनुष्य ने सूत काता वह मर रहा है। यही अवस्था कपास पैदा करने वाले और कपास बुनने वालों की रही है। चाय के सम्बन्ध में देश की गिरी दशा आपको ज्ञात ही है। काग़ज़ातों के देखने से ज्ञात हुआ है कि जूट की उपज ३५ सैकड़ा कम होगई है और चाय वाले भी २० सैकड़ा अपना ख़र्च घटा रहे हैं।

इससे श्रीयुत् राली का यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि एक्सचेंज की ऊँची दर से व्यापार व कृषि में कमी होती है। कहा जा सकता है कि ऊँची दर से चाय का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो पैदावार की अधिकता के कारण हानि उठा रही है। पर बात यह नहीं है। हम उदाहरण द्वारा इसे बतलायेंगे। मानलो कि एक किसान बगीचे में चाय की खेती करता है और उसे वह इंग्लैंड तथा संसार के दूसरे देशों में बेंच कर २० प्रति सैकड़ा लाभ उठाता है। १ शि० ४ पें० प्रति रुपये के हिसाब से १०० पौंड की चाय बेंचता है और १५०० रु० पाता है जिससे उसे २० प्रति सैकड़ा का लाभ होता है।

अब हम एक्सचेंज को २ शि. ८ पेंस के हिसाब से मानेंगे। उस हिसाब से उस चायके १०० पौंड के ७५०) रु० ही मिलते हैं जो हानि है। यद्यपि चाय का सुरक्षित अधिकार है तथापि उसे उसकी क़ीमत बढ़ाने के लिये अपने ख़र्च को कम करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ काल में वह सफल होगा किन्तु जहां वस्तुओं पर ऐसा सुरक्षित, अधिकार नहीं है वहां तो किसानका कुछ भी न बचेगा। सुरक्षित वस्तु की कठिनाइयां कुछ वर्षों में दूर हो जाती हैं। किन्तु जहां ऐसा नहीं है वहां हमेशा के लिये रोना और झींकना बदा है। टकसाल बन्द होने के बाद भारत वर्ष में दो सबसे बड़े अकाल पड़े, एक १८९७ में और

दूसरी १९०० में। किसान भूखों मर रहे थे और लाखों आदमी मर गये परन्तु सरकारी खजाना फिर भी लबा लब था। यह क्या! यह उसी अदृष्य और अप्रत्यक्ष करके कारण। १८९५ में रुपये की दर १५ पेंस थी और इससे ही आमदनी थी; परन्तु उस समय से रुपया १६ पेंस का करदिया अर्थात् १८ प्रति सैकड़ा कर बढ़ादिया। भूंखे किसानों के पेट काट कर खजाने भरे गये। सरकार भी यह बात जानती थी। इस सम्बन्ध मे फाउलर कमेटी के विवरण से एक प्रमाण दे देना उचित है। सर एस. पी. मेकडालन जो अब लार्ड मेकडालन है और जो पहले उत्तर पश्चिमी प्रान्त के लेफिटेन्ट गवर्नर थे उनने १८९८ में करन्सी कमेटी के एक प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहा था—

"हां; यह ठीक है कि टकसाल बन्द कर देने का प्रभाव यह होगा कि टैक्स बढ़जायगा; क्योंकि रुपयों की तादाद तो उतनी ही रहेगी पर वस्तु कभी न बढ़ेगी। किन्तु यह प्रभाव, असावधानी में डाला गया है लोग इसके लिये सचेत न थे। आपकहेंगे कि रुपये की दर १ शि० ४ पें० निश्चित करदेना सफलतादायक था। आयात और निर्यात बढ़ा और कारखान बढ़े। यदि रुपया १६ पें० का कर देने से इतनी तरक्की हो सकती है तो रुपया दो शि० का कर देने से क्यों नहीं होती! इसलिये कमेटी भारत की इस परिस्थिति को देखने के लिये जीवित थी और उसने संसार और प्रजा दोनों की इच्छाओं के अनुकूल कार्य करने का प्रयत्न किया। भारत सरकार का यह कहना

था कि टकसाल बन्द कर दी जायें और रुपये की दर १ शि० ६ पें० रहे क्योंकि उन्हें दिवाले का भय था। हरशल कमेटी ने रुपया १ शि० ४ पें० का निश्चित किया था, पर जब टकसाल बंद हुई तो रुपये की दर उस समय २ शि० ८ पें० थी। हरशल कमेटी ने रिपोर्ट के १३-५ वें फिकरे में लिखा है :-- यह परिणाम निकालना संभव है कि टकसालों के रुपये की दर बढ़ने के अभिप्राय से बंदकरना विशेष आक्षेप योग्य है बनिस्बत इसके कि वे रुपये की कीमत घटाने के लिये बंदकी जायें।

हरशल कमेटी इस कठिनतर कार्य करने के लिये बिठाई गई थी, उसे उसकी भयंकरता ज्ञात थी किन्तु सरकार द्वारा विवश होनेपर उसे ऐसा करना पड़ा। उसने सरकार की इच्छानुसार १ शि० ६ पें० के स्थान पर १ शि० ४ पें० रुपये की दर करना स्वीकार किया। पर यह किस लिये ! यह सिर्फ़ एक्स चेंज को स्थिर करने के लिये था जिस पर ऐंग्लोइंडियन, सरकारी व्यापारी और बेंकरों का अधिकार था और जिसके बिना उनका स्थिति रहना असंभव था। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट के ३४ वें वाक्य समूह में इस प्रकार लिखा है :—

"सब बातों पर विचार कर हम यह परिणाम निकालाते हैं कि व्यापार की स्थायित्व में अनिवार्य दशा की अपेक्षा विशेष सुविधा ही है। ऐसे अनेक उदाहरण पायेजाते हैं और भारत में स्वयं ही ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं कि एक्सचेंज के उतार चढ़ाव से व्यापार में उन्नति हुई है और हो सकती है।

चांदी की कीमत

तब चांदी की कीमत स्थिर करदेने के लिये क्यों कहा गया है? जब चांदी की कीमत बहुत बढ़गई थी जब संसार के सब देश एक प्रकार की भट्टी में पड़े हुए थे जब संसार के किसी देश का एक्सचेंज स्थिर न था और जब अंग्रेजी पौंड के सोने का मूल्य केवल १३ शि० ६ पें० था उस समय एंग्लोइन्डियन सरकार, बेकर और व्यापारी रुपये की कीमत स्थिर करदेने के पक्ष में थे। क्यों कि हमारी दृष्टि से और कुछ कारण न था केवल भारत को अधिक दरिद्री और मूर्ख बनाने के उद्देश्य से ही यह था। और इस प्रकार दर निश्चित करने के बहाने से ऊँची कीमत का लाभ उठाते हुये बेचारे किसान को २ शि० प्रति समय खोने के लिये बाध्यकरना था। सब संसार में उपज घट रही है और चांदी की कीमत जो ११ फरवरी को ८९ ½ पें० थी अब ४४ पे० है। हम 'टाइम्स आफ इन्डिया' के व्यापारिक स्तंभ से निम्न लिखित अंश उद्धृत करते हैं:– " लंदन में चांदी का भाव ४४ पें० गिर गया है जिससे रुपये की चांदी के रूप में क़ीमत सिर्फ १ शि० ४३। ८ पें० रह गई है। ११ फरवरी १९२० को चांदी का भाव लंदन में ८९½ पेंस हो गया था। जब कि स्टार्लिंग एक्सचेंज गत फरवरी मास में ऊँचा कर दिया गया था तो संसार का चांदी का बाजार भारतीय मुद्रा की अधिक क़ीमत हो जाने से, निरन्तर क्रम के भय से उद्विग्न हो उठा था, और

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि इस अवस्था से पूरा २ लाभ उठाने के लिये ही यह प्रबन्ध किया गया था। ज्योंही भारत सरकार ने एक्सचेंज की नीति बदली त्योंही लंदन में चांदी का भाव गिर गया। यह स्मरण रखना चाहिये कि ४४ पें० चांदी का वर्तमान स्यर्लिंग भाव ३२ पें० सोने के बराबर है।"

केवल एक ही मार्ग।

सन् १८९३ के पूर्व सरकार चांदी की क़ीमत कम होने के कारण बड़ी विपत्ति में थी अब वह वस्तुओं के अधिक मूल्य के कारण विशेष चिंतित है। मानलो कि जब टकसालें खुली थीं और जब रुपये काम २३ पें० था तो अनाज का भाव १०० था। १८९५ में एक्सचेंज की दर १३ पें० होगई। अतः अनाज़ का भाव ११४ होगया। १८९५ से १९१३ तक एक्सचेंज १६ पें० रहा और अनाज का भाव १८९ रहा इस प्रकार आप देखेंगे कि केवल १० पें० की कमी से कीमत १४ बढ़गई और सिर्फ ३ पें० की बढ़ती से अर्थात् १८९५ में १३ पें० से १९१३ में १६ पें० होजाने से कीमत में ७५ की बढ़ती होगई। आप कहेंगे कि संसार भर में वस्तुओं का मूल्य बढ़जानेसे रुपये और सावरिन की मोल लेने की कीमत घट गई। यह ठीक है पर हम देखते हैं कि इंग्लैंड में १८९५ और १९१३ के बीच में सावरिन का क्रय मूल्य २२ अंक से गिरा। युद्ध के पूर्व भरत में मूल्य की अधिकता का कारण भारत में चिन्ह

मुद्रा के अधिक प्रचार से था जिसका सर जेम्स बेगवी ने विरोध किया था। सरकार के लिये अब केवल एक ही मार्ग है और वह यही है कि वह २ शि० की दर कम करदे, क्योंकि इससे किसान बे मौत मर जायगें। इसके स्थान पर सरकार वही १ शि० ३ पे० की दर रखे और यह कम से कम दर रहे अधिक से अधिक दर चांदी की दर के हिसाब से चाहे जो हो।



आठवां प्रकरण

क़ागजी सिक्का (Paper Money)

१ क़ागजी सिक्का क्या है ?



धारणतः धन कहने से लोगों को द्रव्य अथवा सोने चांदी के सिक्कों का ही बोध होता है। और वही मनुष्य अधिक धनी समझा जाता है जिसके पास अधिक सोना या चांदी हो। पर वास्तव में सोना और चांदी उसी प्रकार के धन नहीं है जैसे कि गेहूं, चावल, रुई या अन्य सर्व साधारण की उपयोगी वस्तुएं हैं। सोने और चांदी या इन के सिक्के तभी तक धन कहे जा सकते हैं तब तक उन से अन्य पदार्थ खरीदे जा सकते हैं। यदि उनके बदले हम अपने नित्य काम की वस्तुएं न पासकें तो सोना और चांदी मिट्टी तथा पत्थर से भी कम उपयोगी हैं। फिर प्रश्न यह होता है कि तब ये धन स्वरूप क्यों समझे जाते हैं और ये इतने सर्व प्रिय क्यों हैं ?

इस का कारण थोड़े शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य हर एक पदार्थ, जिसकी उसे आवश्यकता होती है, उचित रूप में उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई अन्न

उत्पादन करने में लगा है तो कोई कपड़ा बुनने में, कोई जूता बनाने में और ऐसे ही अन्य प्रयोजन की वस्तुएं बनाने में। पर अन्न, जूता, कपड़ा सभी के लिए आवश्यक वस्तुएं है और कोई इनके बिना नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में कठिनाई यह होती है कि एक मनुष्य को जिस चीज की आवश्यकता है उसके उत्पादन करने वाले को उसकी उत्पादन की हुई चीजों की उसी समय आवश्यकता नहीं होती। इससे बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं। मानलिया जाय कि चमार को अन्न की आवश्यकता है, पर कृषक को जूते की नहीं वरन् कपड़े की आवश्यकता है। ऐसी दशा में चमार भूखों मर जायगा। इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये ही सोने और चांदी का उपयोग होने लगा। जिन से प्रत्येक मनुष्य अपनी उपज बदलने के लिए राजी हुआ, और इस प्रकार सोने और चांदी के सिक्कों से सभी वस्तुएं खरीदी जाने लगीं और ये सर्वमान्य मूल्य मापक हो गये। चांदी और विशेष कर सोना ही इस कार्य के लिए क्यों निश्चित किए गए, इसका वर्णन हम पहले अन्यत्र कर चुके हैं। यहां केवल यह जानलेना चाहिये कि थोड़े परिमाण में इनका मूल्य बहुत होता है और साथ ही इसके मूल्य में अस्थिरता अधिक नहीं होती।

सोना तथा चांदी और विशेष कर इनके सिक्के क्रय विक्रय के कार्य में लाये जाते हैं। पर इनका परिमाण प्रत्येक देश में परिमित है; क्योंकि इनकी उपज को बढ़ाना मनुष्याधीन नहीं

वरन् ईश्वराधीन है। परन्तु जिस प्रकार सभ्यता और जन संख्या बढ़ती जाती है, क्रय विक्रय का परिमाण भी बढ़ता जाता है और इसके लिए अधिक सिक्कों की आवश्यकता होती है। पर इस आवश्यकता को पूरी करने के लिए सोना या चांदी बढ़ाया नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त एक स्थान से किसी दूसरे स्थान में ले जाने के लिए इन धातुओं में खर्च की आवश्यकता होती है। जोखिम भी थोड़ी बहुत उठानी पड़ती है। इन्हीं कठिनाइयों को सोचना तथा देश में करन्सी की संख्या बढ़ाने के लिए बहुत अनुभव के बाद प्रायः सभी सभ्य देशों में नोट अथवा कागज के सिक्के चलाये गये हैं।

कागजी सिक्के तीन प्रकार के होते हैं।

(१) प्रथम वे नोट जो वास्तव में सिक्के के प्रतिवाचक होते हैं, अर्थात् किसी बैंक या अन्यत्र रखे हुए द्रव्य की रसीद होते हैं। इस प्रकार के नोट में किसी प्रकार की असुविधा नहीं है और जब चाहें नोट के बदले में रुपया ले सकते हैं। एक तरह से तो ऐसे कागज के रुपयों और सिक्कों में तो कोई भेद नहीं है।

(२) "प्रतिज्ञात्मक" नोट वा हुंडी जिनका आधार हुंडी कर्ताका विश्वास और उसकी प्रतिष्ठा वा साख है। इस प्रकार के नोट व्यापार में बहुत चलते हैं और इनका प्रचलित होना परस्पर परिचय और विश्वास पर होता है। यह बात

'प्रसिद्ध हैकि ''जबान ही सोना है'' और जिस मनुष्य के विषय में यह कहावत सच हो उसकी हुंडी चलना बिल्कुल उचित और न्याययुक्त ही प्रतीत होता है, क्योंकि उसकी साख में लोगों को भरोसा है

(३) तीसरे प्रकार के नोट वे हैं जिन्हें किसी देश को गवर्नमेन्ट चलाती है। वास्तव में ये नोट सोने या चांदी के आधार पर नहीं होते और इसी लिये चलाये जाते हैं जिसमें ये सोने और चांदी का न्यूनता को पूर्ण करें। यद्यपि उन पर ''सौ रुपये के नोट 'पचास रुपये के नोट'' ''इत्यादि शब्द लिखे रहते है, पर ये शब्द केवल भ्रमात्मक हैं इसके बदले में सोने और चांदी के सिक्कों के पाने की संभावना सर्वथा सिद्ध नहीं होती। सरकार की साख पर वे नोट चलाये जाते हैं। और विशेषकर इसी प्रकार के प्रचलित नोट का माप पेपर करन्सी है।

ऐसे नोटों का सोना या चांदी का अधिकारपाना विचार विरुद्ध और असंगत जान पड़ता है पर हर एक देश में अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि सर्व साधारण इस प्रकार के कागज के सिक्के को वही स्थान देते हैं और उसी प्रकार से काम में लाते हैं जैसै चांदी और सोने के सिक्कों को। और ऐसा करना उचित भी है क्योंकि जब ये कागज के उजले या नीले टुकड़े क्रय-विक्रय करने, ऋण चुकाने, कर देने या अन्य भिन्न कार्यों में उसी प्रकार आसकते है जैसे कि धातु के उजले तथा पीले सिक्के तो फिर इनका भी आदर उन्हीं सिक्कों के समान क्यों न हो!

लेकिन इन सब समानताओं के रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि नोट और रुपयों में गहरी असमानता है और रहेगी। नोट की क़ीमत रुपयों के मूल्य की अपेक्षा शीघ्र घट बढ़ सकती है। इनकी सीमा परिमित है और वे सिक्कों से अधिक परिवर्तन शील होते हैं।

(१) नोट का मूल्य अस्थायी नहीं हो सकता क्यों कि नोट की स्थिति और नाश गवर्नमेन्ट के आधीन है। यदि किसी देश की गवर्नमेन्ट नोटों को उठादे तो उनको ग्रहण कर्ताओं के हाथ में एक रद्दी काग़ज के अलावे और कुछ नहीं रह जायगा। विशेष कर क्रान्ति के समय या राज्य परिवर्तन होने पर ये नोट रद्दी कागज हो जाते हैं, क्योंकि इनका वास्तविक मूल्य कुछ नहीं है। इनका मूल्य कानून द्वारा निश्चित किया जा सकता है अतएव इनके मूल्य की घटी बढ़ी राज्यकी सत्ता व निर्बलता पर निर्भर है। पर सोने और चांदी के सिक्कों की यह अवस्था नहीं है, क्योंकि इनका वास्तविक मूल्य सब काल और सब देशों में लगभग समान ही रहता है। यदि क़ानून से सिक्के उठा दिये जायँ तो भी उनके सोना और चांदी का धातु मूल्य अवश्य रह जायगा।

(२) नोट का मूल्य परिमिति सीमा के अन्तर्गत ही रहता है। यह कहा जा चुका है कि नोट का मूल्य क़ानून के आश्रित है और किसी देश के क़ानून उस देश के बाहर लागू नहीं होते अतएव एक देश का नोट दूसरे देश में नहीं चल सकता। जिस

से अन्तर्जातीय व्यापार को क्षति पहुंचा करती है। इसके प्रतिकूल सोना और चांदी का मूल्य सभी सभ्य देशों में करीब २ समान रहने के कारण सिक्के अन्तर्जातीय व्यापार में काम आ सकते हैं। यद्यपि ये सिक्के के स्वरूप में नहीं लिए जा सकते परन्तु धातु के मूल्य पर से किसी को लेने देने में आपत्ति नहीं होती।

(३) अन्त में नोट का मूल्य बहुत शीघ्र घट बढ़ सकता है जिसके कारण व्यापार में बड़ी अशान्ति फैल सकती है। धातु के सिक्कों का घटना बढ़ना एक हद तक प्राकृतिक नियमों के आधार पर होने के कारण बहुधा इनका परिमाण और मूल्य स्थायी होता है। पर नोट का घटना बढ़ना बिल्कुल सरकार के आधीन है और एक लालची तथा अदूरदर्शी सरकार अधिक परिमाण में जब चाहे नोट निकाल सकती है जिसके कारण इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि चीजों का मूल्य बढ़ जाया करता है और अनेक कठिनाइयां उपास्थित होजाती हैं। यह सत्य है कि भू गर्भ में नई खानों के मिल जाने पर सोने और चांदी का भी परिमाण भी कभी २ बढ़ जाता है जिस कारण इनका मूल्य भी कम हो जाता है। पर इनका व्यापार संसार-व्यापी होने के कारण इस घटाव या बढ़ाव का भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ता पर नोट के लिये यह नहीं कहा जा सकता। एक ही देश में परिमित रहने के कारण इनकी संख्या का घटाव बढ़ाव इनके मूल्य को भी घटा बढ़ा देते हैं। कभी २ तो ऐसा होता है कि

बाज़ार में चीज़ें दो दर पर बिकने लगती हैं। यदि वे रुपये से खरीदो तो कम दाम देना पड़ता है और नोट से खरीदो तो अधिक।

पूर्वोक्त बातों से यही प्रकट होता है कि कागज के रुपये अथवा नोटों में बहुत आपात्ति है तथा इनको व्यवहार में लाने में अनेक असुविधायें हैं। पर विचार कर देखा जाय तो संसार में ऐसी कम बातें या वस्तुएं निकलेंगी जिनमें दोष न हो। पर इसके कारण उन वस्तुओं का सर्वथा त्याग कर देना संसार उचित नहीं समझता। और यदि करे भी तो अनेक कठिनाइयां सहनी पड़ेंगी। ऐसी अवस्था में उस चीज को छोड़ना नहीं बल्कि उसको सुगम और सुलभ बनाने का यत्न करना चाहिये। कागज के रुपयों में जो दिक्कत और असुविधायें हैं, यदि सभी राष्ट्र चाहें तो बहुत कम की जा सकती है। एक अन्तराष्ट्रीय संस्था द्वारा यदि केवल एकही प्रकार के नोट निकाले जायँ और हरएक देश के लोग उन्हें लेने को उद्यत हों तो किसी प्रकारकी झंझट न होगी। और न मनुष्यों को सोना और चांदीके लिए अपरिमित परिश्रम और धन व्यय करना पड़ेगा। प्राचीन समयमें ऐसा होना संभव नहीं था। पर आज विज्ञान के युगमें जब संसारके सभी देशोंमें परस्पर सम्बन्ध घनिष्ट होता जा रहा है तो एकही नोट का सर्वत्र प्रचार किया जाना असंभव नहीं प्रतीत होता।

नोट मनुष्यकृत वस्तु है और सोना चांदी प्रकृति दत्त। अतएव इसकी महिमा और उपयोगिता नोट से अधिक है, ऐसा

कहना ठीक नहीं। इसके प्रतिकूल यह कहा जा सकता है कि मनुष्यकृत होने पर भी नोट सोने और चांदी के रुपयों से क्रय विक्रय के काम में लाने के लिए उतने ही अधिक उपयोगी हैं, जितनी कि मनुष्यकृत घड़ी प्रकृतिदत्त सूर्य्य से समय बताने में है, और मनुष्यकृत मोटर प्रकृतिदत्त सवारी से है। सोना और चांदी हमारे अधिकार में नहीं है अतएव हम अपनी आवश्यकतानुसार उनको घटा बढ़ा नहीं सकते। पर नोट हमारे आधीन होने से सावधानी के साथ हम उन्हें घटा बढ़ा भी सकते हैं।

इसके अतिरिक्त पेपर करन्सी को काम में लाकर हम किसी देश की आर्थिक अवस्था सुधार सकते हैं। किसी देश की आर्थिक उन्नति उस देश के अन्तर्जातीय व्यापार पर निश्चित होती है। पर अन्तर्जातीय व्यापार के लिए सोने और चांदी के व्यापार की आवश्यकता होती है। और जबतक हम इनका परिमाण बढ़ा नहीं सकते, हम देश के व्यापार की भी वृद्धि नहीं कर सकते। पर यह बात स्पष्ट है, कि अनेक इच्छा करने पर भी हम सोने और चांदी की उपज नहीं बढ़ा सकते। इसके बढ़ाने का केवल एकमात्र उपाय यह है कि ये द्रव्य देशमें स्थायी कार्यों के लिए अधिक परिमाण में लगाय जायँ यदि हम देश के अन्तर्गत नोट से काम लें और इस प्रकार उनका व्यवहार कर सोने चांदी की बचत कर अन्तर्जातीय व्यवहार करें तो बहुत लाभ हो सकताहै। इसी बात की उपयोगिता प्रकट करते हुए प्रसिद्ध

अर्थ शास्त्रज्ञ एडम स्मिथने कहा है, "धातु के सिक्के जो देशके भीतर व्यवहार में लाए जाते हैं वे निरर्थक पूंजी हो जाते हैं, यदि इनकी जगह हम देश के भीतर नोटों से काम लें तो देश का सभी सोना और चांदी अन्तर्जातीय व्यापार में लगा सकते है और इस प्रकार देशकी आर्थिक दशा सुधारी जा सकती है। नोटों की उपमा देशकी सड़कों से दी जाती है। यदि हम वायु मण्डल पर कोई चलने का मार्ग पा लें तो ये सड़कें उपजाऊ बनाई जा सकती हैं और इस प्रकार देशकी उपज बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है।

हमारे पाठकों ने कागजी सिक्के के मुख्य तत्व को भली भाँति समझ लिया होगा। इसके उपरान्त हम कागज के सिक्कों के इतिहास उनके संगठन उनकी व्यापकता तथा अन्य समस्याओं का विवेचन करेंगे। सबसे पहले इतिहास की ओर दृष्टि डालिए।

३—इतिहास।

पेपर करन्सी के इतिहास का आरंभ १८३९-१८४३ से होता है, जब कि प्रान्तीय बैंकों को नोट चलाने की आज्ञा दी गई थी। ये नोट लीगल टेंडर न थे और उनका उपयोग उन्हीं व्यापारिक केन्द्रों में किया जाता था, जहां ज्यादा तादाद में अदायगी के लिए धातु के स्थान में अन्य सिक्के की आवश्यकता होती थी। गदर के बाद भारत सरकार की आर्थिक अवस्था के

निरीक्षण और सुधारके लिए एक स्पेशल फाइनेन्स मेम्बर की नियुक्ति हुई। अर्थ सचिव श्रीयुत् जेम्स विलसन के अर्थ सम्बन्धी कार्यों में सबसे पहला काम नोटों का प्रचलन करना और उनकी व्यापकता को बढ़ाना है। यद्यपि उन नोटों का अत्याधिक प्रचलन न हुआ तथापि वे जानते थे कि इसका कारण इन नोटों का सिर्फ लीगलटेंडर न होना ही है। लीगल बनाने के लिए जनता का विश्वास नोट सरकारना तथा एक कोष की आवश्यकता आदि कई बातें की जाने को थीं। बैंकों द्वारा चलाए गए इन नोटों के लिए कोई अच्छा काम न था, क्यों-कि उन्हें आवश्यकता के अतिरिक्त २५ प्रति सैकड़ा का संयुक्त कोष रखना पड़ता था। विद्रोह के पश्चात् विलसन ने नोटोंको केन्द्रीभूत करने और उन्हें जनता का (Monopoly)हक बनाने का विचार किया। यह केवल इसी लाभ से नहीं कि पूंजी गत कोष से ब्याज का रुपया बचाना बल्कि इस-लिए भी कि उन्हें जनता का विश्वास पात्र बनकर नोटों की व्यापकता बढ़ाने की अतीत आवश्यकता थी। इन नोटों के प्रसार के लिए जिस विश्वास की आवश्यकता थी उसे कोई भी संस्था यहां तक कि अच्छा से अच्छा बैंक भी नहीं पैदा कर सकता था। और यह तो प्रत्यक्ष ही था कि नोट प्रचलन का नफ़ा स्टेट लेती; जो इस प्रकार का टैक्स था व जो नोटों के रूप में जनता पर लगाया गया था।

मि० विलसन और उनके साथी तथा सर चार्ल्सवुड, तत्कालीन भारतमन्त्री, भारतीय नोट प्रचलन को जनता का (Monopoly) हक़ बनादेने के लिए पूर्णतः सहमत थे; किन्तु वे उसी दृष्टि कोण से कोष की आवश्यकता को न देखसके। बुलियन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो जाने के पश्चात् इंग्लैंड में अधिकारी वर्ग पेपर करन्सी के प्रतिरोध का स्मरण रखते हुए कोई ऐसा प्रबन्ध न कर सका जिस पर १८४४ का बैंक एक्ट लागू न होता हो। ये प्रत्येक नोट के लिए उतने ही परिमाण की नक़द मुद्राएं रखना चाहते थे।

अन्ततः हिन्दुस्तान और इंग्लैंड के अधिकारियों में परस्पर समझौता हो गया और १८६१ में पेपर करन्सी एक्ट पास हो गया, जिसके अनुसार इस पर लागू होने वाले सब कानून रद हो गए और एक बिल्कुल नई पद्धति का प्रारंभ हुआ। इस पद्धति की मुख्य बातें ये थीं:—

१—करन्सी नोट अपने २ प्रचलन केन्द्रों में अपरिमित संख्या में लीगलटेंडर बना दिये गये और वे गवर्नमेन्ट द्वारा (Exclusively) केवल चलाए जाते थे।

२—प्रत्येक केन्द्र के हेड क्वार्टर में ये प्रतिज्ञात्मक नोट भुनाए जा सकते थे। एक सीमा के नोट दूसरी सीमा में चालू न थे। हाँ, सरकारी ऋण चाहे जिस सीमा में से दिया जा सकता था। इसी प्रकार रेलवे कम्पनियां भी प्रत्येक सीमा के नोट अपने

किराये वगैरा में ले सकती थीं और उनके बदले में सरकार से नक़द रुपये ले सकती थीं। यदि जनता के ट्रेज़री में अच्छे परिमाण में रुपया होता तो वह भी प्रत्येक स्थान के नोट ले सकती थी। इस प्रकार के कुल चार केन्द्र थे—१ कलकत्ता २ बम्बई ३ मद्रास और ४ रंगून और ४ उपकेन्द्र थे यथा:—कानपुर, लाहौर, करांची और कालीकट। सन् १९ १०के एक्टके अनुसार ये उपकेन्द्र उठा दिए गए; और अब कुल मिला कर ७ ऐसे स्थल है। इस प्रकार इस दृष्टि से देश को कई भागों में विभक्त करना विरोधात्मक है; क्योकि इस प्रकार केन्द्री भूत प्रचार से नोट व्यापक नहीं हो सकते थे और न धातुमुद्रा-कोष का प्रश्न कोई भारी प्रश्न रह जाता था। इसके विरुद्ध हिन्दुस्तान में नोट का प्रचलन एक नई बात थी। गदर के पश्चात् सरकार की साख भयपूर्ण थी। वर्ष के भिन्न २ अवसरों पर हिन्दुस्तान के भिन्न २ स्थानो में नक़द रुपयों की मांग भी भिन्न थी। अतएव यही उचित था कि नोट भुनाने के लिए पूर्ण सुविधायें देकर उन्हें इतना व्यापक बनाया जाय कि उनकी मात्र व्यापकता ही राज्य की साख बढ़ाने वाली होजाय। तथापि जब कि नोट की गहरी नींव जनता के गहरे विश्वास पर डाली गई थी, जब कि लोग नोटों को तत्काल भुनाने की अपेक्षा उन्हें अन्यकार्यों में उपयोग करना सीख गये थे तब प्रणाली को परिवर्तित करने का उपयुक्त समय था। जैसा कि हम देखेंगे यही बात पहले करन्सी कानून के पास होने के ठीक ५० वर्ष बाद हुई और यह बात कि इस लम्बे

अवकाश में नोटों का अधिक प्रसार न हुआ, पद्धति के कर्ताओं के लिए दोष देने वाली नहीं हो सकती।

(३) पहले पहल १०,२०,५०,१००,५०० और १००० तक के नोट चलाये गये थे। लोगों की दरिद्रता और उनके साधारण लेन देन को देखते हुए तत्कालीन पौंड के रूपमें रुपये की कीमत के अनुसार सब से छोटा नोट २० शि० का आवश्यक था। सन् १८७१ में पाँच रुपये का नोट चलाया गया और इसके बाद दस हजार रुपये का नोट चलाया गया। सन् १९०३ पाँच रुपये का नोट एक बर्मा को छोड़ कर सर्वत्र चालू सिक्का कर दिया गया। सन् १९१० के एक्ट के अनुसार २० रु. का नोट बंद कर दिया गया और तब ५० और १० रु. के नोट सर्वत्र चालू कर दिये गए अर्थात् वे प्रत्येक स्थान में चल सकते थे। और भारत सरकार को अधिकार दिया गया कि वह और अधिक मूल्य के नोट सर्वत्र-चालू-सिक्के बनादे। इसी अधिकार के अनुसार सन् १९११ में १०० सौ रुपये का नोट सर्वत्र-प्रचलित होगया। सन् १९१० के एक्टके अनुसार बर्मा में भी पाँच रुपये का नोट चलने लगा। सन् १९११ में सरकार ने अधिक मूल्य के नोटों को उनके प्रचलन-केन्द्र के अतिरिक्त अन्यस्थलों में सरकारी ऋण, रेल, बन्दर और तार घर आदि में लेना बंदकर दिया।

(४) करन्सी नोटों का कुल द्रव्य परिमाण करन्सी तथा भारत तथा विलायत सरकार की हुंडियों से संरक्षित है। पहले इस कोष में केवल चांदी ही रहती थी पर

सन् १८६३ में जब नीति पुनर्निर्धारित की गई और रुपये का मूल्य पौंड के अनुसार निश्चित किया गया तब से कोष में सोना और चांदी दोनो रखी जाने लगीं। कोष में कुल द्रव्य ४ करोड़ था पर जैसे २ नोट बढ़ते गये द्रव्य का परिमाण भी छः करोड़ हो गया। किन्तु फिर भी नोटों का प्रचलन बढ़ता ही गया। अतः में सन् १८६० के चौथे ऐक्ट के अनुसार उस द्रव्य को ८ करोड़ तक बढ़ा देने का अधिकार दिया गया। फिर १८६६ में ऐक्ट २१ के अनुसार ये १० करोड़ रुपये हो गये; किन्तु सन् १९०५ के ३ रे ऐक्ट के अनुसार २ करोड़ की रकम और जोड़ दी गई यह रमक भारत सचिव द्वारा एक्सचेकर बाँड और कौन्सल के रूप में दी गई। सन् १९०८—९ में इन बौंडों के स्थान पर कौन्सल कर दिये गये। सन् १९११ के ७ वें ऐक्ट के अनुसार और दो करोड़ की रक़म बढ़ाई गई जिसे भारत सचिव ने और दो करोड़ के कौन्सल के रूप में देदी। इस प्रकार महायुद्ध के ठीक पूर्व यह रकम १४ करोड़ हो गई थी इनमें से केवल ४ करोड़ हुंडियो के रूप में थे। धातु के सिक्कों के सम्बन्ध में उन्हें सोने के रूप में या चांदी की सिल के रूप में अस्थाई प्रकार से इंग्लैंड में रखे जाने का निश्चय हुआ। इस का उद्देश्य हिन्दुस्तान को आपत्तिकाल में सहायता पहुँचाना ही था। सन् १९०५ के ऐक्ट के अनुसार यह अधिकार दिया गया कि कुल कोष धातु के सिक्कों के रूप में रखा जाय और वह चाहे इंग्लैंड में रहे या हिन्दुस्तान में अथवा थोड़ा २ दोनों जगह रहे। इसके साथ ही सोने के सिक्के या उसकी सिल तथा

चांदी के सिक्के और चांदी की सिल भी रखी जा सकती थीं, पर शर्त यह थी कि चांदी के सब सिक्के हिन्दुस्तान में ही रखे जायें। इसके अनुसार लंदन में एक पेपर करन्सी चेस्ट सन्दूक (Chest) रखी गई। ६,०००,००० पौंड मूल्य का सोना हिन्दुस्तान से वहां रखने के लिये भेजा गया। भारत सचिवकी ओरके द्रव्य-अवशेष से और १,०४५,००० पौंड वहां ट्रांसफर कर दिये गये। इस सोने का परिमाण क्रमशः बढ़ने लगा और महायुद्ध के एक बर्ष पूर्व ३१ मार्च सन् १९१३ में कुल कोष का द्रव्य इस प्रकार विभक्त था:—

		करोड़ों रुपयों में
भारत मे चांदी	...	१६·४५ रु०
” ” सोना	...	२९·२७
लंदन में ”	...	१·५
हुंडियां	....	१४·००
कुल		६८·९७ रु०

४–पेपर करन्सी के दफ्तर का संगठन।

भारत में पेपर-करन्सी की समस्या पर और विचार करने के पूर्व यह जान लेना चाहिये नोटों के प्रचलन का प्रबन्ध

एक पेपर करन्सी डिपार्टमेन्ट (दफ्तर) द्वारा होताहै। जिसका कर्त्तव्य है कि वह रुपया अठन्नी और सावरिन के बदले में नोट चलाये। सोने की सिल और सोने के सिक्कों के बदले में भी नोट चलाये जा सकते है पर यह कंट्रोलर खास की अनुमति से होना चाहिये। नोट भारत सचिव द्वारा इंग्लैंड बैंक से दिये जाते हैं। पश्चात् हेड कमिश्नर द्वारा यहां देश में करन्सी एजंटो को नोट दिये जाते हैं। सर्वत्र प्रचलित नोट को छोड़कर प्रत्येक नोट पर जहां से वह चलाया गया है उस केन्द्र का नाम देता है साथही प्रत्येक नोट पर हेड कमिश्नर, कमिश्नर या डिप्टी कमिश्नर के हस्ताक्षर होते है।

५—पेपर करन्सी की समस्याएं।

(अ) नोटों की व्यापकता।

पेपर करन्सी एक्ट को पास हुए ५० वर्ष से अधिक होगये और सिक्के उसी रूप को चले। ८० वर्ष से अधिक होगये फिर भी जैसी आशा थी वह न होते हुए भी सन् १८६२ में प्रचलित नोटों का कुल द्रव्य परिमाण ३६९ लाख रुपये था। ३० वर्ष बाद वह २७१० लाख रुपये था और उस के पश्चात् उन्नति इस प्रकार हुई:—

करोड़ों रुपयों में प्रचलन का औसत।

वर्ष	(Gross.)	(Net.)	Active.
१८९२–९३	२७·१०	२३·३३	१९·५३
१८९३–९४	२८·२९	२०·८३	१७·८५
१८९९–१९००	२७·९६	२३·६७	२१·२७
१९००–०१	२८·८८	२४·७३	२२·०५
१९०२–०३	३३·७४	२७·३५	२३·४९
१९०४–०५	३९·२०	३२·७६	२८·११
१९०६–०७	४५·१४	३२·४९	३३·९३
१९०८–०९	४४·५२	३९·०२	३३·१०
१८०९–१०	४९·६६	४५·३५	३७·२१
१९१०–११	५४·३५	४६·४८	३८·७५
१९११–१२	५७·३७	४९·४९	४१·८९
१९१२–१३	६५·६२	५४·९२	४५·३९
१९१३–१४	६५·५५	५५·६२	४६·६३
१९१४–१५	६४·०४	५९·२८	४५·४३
१९१५–१६	६४·१०	६०·३९	४८·०८

३१ मार्च सन् १९१४ के दिन चलाए गए कुल नोटों का मूल्य परिमाण ६६ करोड़ रुपया था। भारतवर्ष में उसकी मुद्रा-प्रणाली अवृद्धिशील होने के कारण, नोटों के प्रचलन की उन्नति की आवश्यकता जान पड़ती है। नये कानून के अनुसार नये नोट तब तक नहीं चलाये जा सकते जब तक कि कोष में उतना ही नक़द द्रव्य न हो। यद्यपि कोषगत द्रव्य गत महा युद्ध के पूर्व

बहुत कुछ बढ़ा दिया गया था और यद्यपि कुल प्रचलित द्रव्य परिमाण ८३, ४०,१७ ५७० रु० था तथापि इसमें नोटों का भाग कुल का $\frac{२}{५}$ ही है। इसके अतिरिक्त भारत वासी अभी तक चेक पद्धति (Cheque System) से परिचित नहीं है जिसने इग्लैंड की अवृद्धिशील मुद्रा पद्धति को दबादिया और न हम यही आशा करते हैं कि निकट भविष्य में बड़ी २ रकमों को जमा करने के लिए लोग चेक प्रणाली का अनुसरण करेंगे। ऐसेही अवसर में हिन्दुस्तान का व्यापार बढ़ रहा है। सन् १९१३--१४ में ही विदेशी समुद्री व्यापार २२.५९ (१८७५--७६) से ४०८.८३ करोड़ रुपयों का होगया। यदि हम इस में अन्तर्देशीय लेन देन की रक़म भी सम्मिलित करलें तो फिर कहना ही क्या? ऐसी दशा में जब कि व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, लोग एक ऐसे विनिमय माध्यम के अभाव का अनुभव करेंगे, जो समयनुसार सरलता पूर्वक वृद्धिगत किया जा सकता हैं।

इस आवश्यक सुधार के लियेनाना प्रकार की बातें सुझायी गई हैं। चेम्बरलेन कमीशन ने लिखा है, "हम इसे यथोचित समझते हैं कि हिन्दुस्तान में नोटों की उन्नति प्रत्येक न्याययुक्त उपाय से की जाय। इस उद्देश्य की दृष्टि में रखते हुए हम सरकार से सिफारिश करते हैं कि वह जहां पर जिस प्रकार संभव हो उन स्थानों को बढ़ाये जहां नोट भुनाए जा सकते हैं साथ चलन के सिक्कों की बहिर्गत सुविधाओं का भी प्रयत्न करे।

हमारी सम्मति में तो यह उचित होगा कि ५०० रु० के नोट सर्वत्र-प्रचलन गत बना दिये जांय। अनुभव से हम कह सकते हैं कि इससे भी अधिक परिमाण के नोट सर्व-गत किये जा सकते हैं।" इस सम्बन्ध में यदि कोई प्रतिरोध है तो वह यही कि ऐसा करने पर सरकार नक़द द्रव्य का उतना ही कोष बढ़ाना पड़ेगा साथ ही उसे एक ज़िले से दूसरे में भेजने में बहुत व्यय करना पड़ेगा। किन्तु हमारी समझ से तो सरकार को इस प्रकार कोष बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस सुधार से व्यापारी समुदाय को बहुत सुविधा होगी और नोटों का अधिक प्रचलन इतर व्ययों से कहीं अधिक न पड़ेगा।

दूसरे प्रस्ताव के विषय में, जिसमें जनता के ध्यान को आकर्षित किया है और जिसे अर्थ सचिवने बाह्यतः स्वीकार भी कर भी कर लिया है, येही बातें नहीं कही जा सकतीं। भारतवर्ष की दरिद्रता को ध्यान में रखते हुए साथ ही लोगों के लेन देनके द्रव्य को बहुत ही क्षुद्र परिमाण देखते हुए यह कहा जाता है कि कमसे कम रुपयों के नोट भी हिन्दुस्तान के लिये सर्व गत सिक्के बनाये जाने योग्य नहीं हैं। और इसके लिये फ्रांस का उदाहरण दिया जाता है कि वहां शान्ति के समय मे भी ५ फ्रैंक यानी ३ रु० के कम से कम नोट प्रचलित थे। फ्रांस के लोग भारत से अधिक धनी हैं और उनके लेन देन के द्रव्य की संख्या अधिक है पर वहां भी युद्ध काल में १ फ्रैंक यानी १० आने के नोट चलाये गये

थे। ऐसे नोटों का प्रचलन तभी आवश्यक होगा जब उनका उद्देश्य धातु के सिक्कों की किफ़ायत करना होगा, विशेष कर उस अवस्था में जब कि युद्ध--काल हो। रूस--जापान युद्ध के समय जापान ने १० सेन्ट के नोट चलाये थे। भारत में भी जब ऐसी व्यापारिक चिन्तनीय स्थिति आ पड़ी तो अर्थ सचिव को एक रुपये और ढाई रुपये का नोट चलाना पड़ा। एक रुपये के नोट के विरुद्ध अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं तथापि हम केवल इतना ही कहेंगे कि बिल्कुल अनिवार्य अवस्था को छोड़ कर अन्य देशों में हिन्दुस्तान में और देशों का अंधा अनुकरण कर एक १ रुपयेके नोट चला देना ठीक नहीं। हिन्दुस्तानी १ रुपये के नोट की अपेक्षा एक रुपया ज्यादा पसंद करेंगे। इसके विरुद्ध सरकार को चाहिये कि वह ५००, १०००, १००००, तक के नोटों को सर्वत्र-प्रचलित बनादे और उनके बदल में रुपयों के मिलने और इसी प्रकार रुपयों के बदले में नोटों के मिलने का प्रबन्ध करे तो अच्छा है।

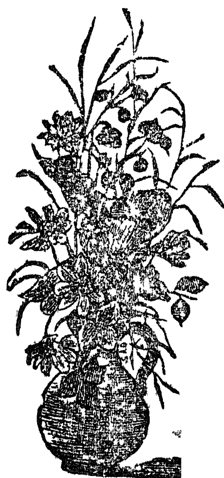
२—मुद्रा कोष।

हम इस कोष का युद्ध के पूर्व तक का इतिहास पहले ही लिख चुके हैं और यह भी दिखला चुके हैं कि उसमें दो मुख्य भाग होते हैं, धातुकोष और हुंडियां जिनमें से प्रत्येक भाग प्रथम सोना और चांदी व दूसरा रुपये और पौंडों के रुपये उपविभागों में विभक्त है। ३१ मार्च १९१४ को कोष गत द्रव्य इस प्रकार विभक्त था:—

रुपये	२०, ५३
लंदन में सोने के सिक्के और सिल	६, १५
भारत में ,, ,,	२२, ४४
लंदन में हुंडियाँ	४, ००
हिन्दुस्तान में ,, ...	१०,००
कुल —	६११२

इस कोष के निर्माण और स्थान के विषय में वहुत विवाद प्रचलित है। चेम्बरलेन कमीशन ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह इस योग्य है भी नहीं कि उससे यह आलोचना कर सके। पहले धातु-मुद्रा-कोष को ही लीजिये, इसकी स्थापना जिस उद्देश्य से की गई थी अब उसका उपयोग किसी दूसरे प्रकार से और दूसरे ही कामों में किया जाता है। इस कोष का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह नोटों के बदले में रुपये दे। चेम्बरलेन कमीशन ने कहा है कि भारत में कोष में सोना रखना बिल्कुल व्यर्थ है क्यों कि यहां स्वर्ण-मुद्रा-पद्धतिन होने के कारण लोग रुपये ही लेंगे। पर हम समझते हैं कि यदि लोग नोटों के बदले में रुपये ही लें तो सोना रखना व्यर्थ है। कोष की शक्ति संवर्धन के लिए सोने की बड़ी आवश्यकता है। सोने का अधिकांश इंग्लैंड भेज देना कि उससे भारत में सिक्कों के लिए चांदी ली जा सके कदापि न्यायानुमोदित नहीं है। दूसरे जो यह कोष हिन्दुस्तान में न रख इंग्लैंड में रखा जाता है बड़ी ही कुटिलता

है। कहा जाता कि इसे वहां रखने का उद्देश्य यह है कि इंग्लैंड के बाजार की स्थिति ठीक रहे। यह तो भारत के साथ सरासर छल करना है, भारत को संसार के स्वर्ण के अपने भाग से वंचित रखना है। कुछ भी धातु-मुद्रा-कोष चाहे समुचित हो या न हो यह तो स्पष्ट है कि कागज के सिक्के का कोष अपने लक्ष्य से च्युत हुए बिना विनिमय को स्थिर रखने के काम में नहीं लाया जा सकता।



९ वां प्रकरण

भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता।



भारत में सिक्कों के प्रारंभिक काल में प्रधान सिक्का चाहे जो रहा हो पर यह बात तो इतिहास सिद्ध है कि सन् १८३५ में प्रणाली के संगठन से तथा कम्पनी के राज्य में सर्वत्र संगठित रुपये के प्रचार काल से किसी न किसी रूप में भारत में सोने के सिक्कों के सम्बन्धमें आन्दोलन होता रहाहै। सन् १८३५ की क्रान्ति के उपरान्त—जब सरकार ने सोने के सिक्के को चलता सिक्का मानने से इन्कार कर दिया—ये सोने के सिक्के इतने अधिक परिमाण में प्रचलित थे कि सरकार को उनकी स्थापना के ६ वर्ष पूर्व ही अपना बन्धन उठा लेना पड़ा। सन् १८५२ में आस्ट्रेलिया और केलिफोर्निया की सोने की खानों के निकल आने से सोने की अधिक अभिवृद्धि के कारण उसकी क़ीमत गिर जाने के भय से लार्डडलहौसी की सरकार ने कम्पनी के सार्वजनिक कोषों में सोना लेना बंद कर दिया और इस प्रकार सोने का सिक्का बिल्कुल उठगया। किन्तु इस कार्य के घोर विरोध होने की संभावना थी क्योंकि वह तत्कालीन मुद्रा प्रणाली के विरुद्ध कार्य था। अमरीकन सिविलवार से भारत के

पुनरभ्युदयकाल में तीनों प्रदेशों की चेम्बर्स आफ़ कामर्स ने फिर सोने के सिक्के का आन्दोलन उठाया। सन् १८६४ में भारत सरकार ने अपने एक खरीते में, भारत मन्त्री को लिखा था कि भारत में भी सावरिन और अर्द्ध सावरिन चलन सिक्के प्रति सावरिन १० रु० के हिसाब से माने जायें। उसी के साथ यह सुझाया गया कि नोटों के बदले में रुपये की तरह सावरिन भी दिये जायें; किन्तु दोनों धातुओं के लिये एकसी ही सुविधा के सम्बन्धमें वह बाध्य न थी। होम गवर्नमेन्ट-इंग्लैंड की सरकार इस बात के विरुद्ध थी कि अंग्रेजी स्टेंडर्ड सिक्का भारत में अपरिमित चालू सिक्का बना दिया जाये; किन्तु इस सम्बन्ध में उन्हें कोई विरोध न था कि सरकार द्वारा निश्चित रेट पर सार्वजनिक कोषों में सोने का सिक्का लिया जाय और इसकी सूचना सर्वसाधारण को देदी जाये। तदनुसार २३ नवम्बर सन् १८६४ की सूचना द्वारा इस बात की आज्ञा दे दी गई कि अंग्रेजी सिक्का--सावरिन और अर्द्ध सावरिन--सरकारी ऋण चुकाने के लिये १० रु० = १ पौंड और १८३५ की सोने की मुहर १५ रु० प्रति मुहर के हिसाब से कोषों में लिया जाये।

३० वर्ष में दो चार छोटे बड़े परिवर्तनों के हो जानेपर अब इस बात की घोर आवश्यकता आ पड़ी थी कि भारतीय मुद्रा प्रणाली की एक राजकीय कमीशन द्वारा भली भाँति जांच करायी जाये। तदनुसार सन् १८६६ में एक कमीशन बैठा जिसने भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता को महसूस किया

और यह सम्मति दी कि सरकारी ख़ज़ानों में अंग्रेजी और आस्ट्रेलियन सावरिन स्वीकार किये जायें और सोने के परिवर्तन में करन्सी नोट चलाये जायें। सन् १८६९ में सोने की कीमत में कुछ बढ़ती कर पहली सम्मति तो कार्य रूप में परिणित करदी गई; इस समय सावरिन १० रु० ४ आने का था।

यह फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के अन्त में और जर्मनी द्वारा चांदी मुद्रा से हटा देने पर हुआ था। इस परिवर्तन के ३ वर्ष उपरान्त लार्ड नार्थब्रुक की कौन्सिल के अर्थ सचिव सर रिचार्ड टेम्पलने भारतमें सोने की मुद्रा प्रणाली और सोने का सिक्का चलाने के सम्बन्ध में एक सुविचार पूर्ण मेमोरेंडम (उद्देश्य पत्र) पेश किया। फिर आगे कई वर्षों तक भारत सरकार द्वारा अनेक सम्मतियां दी जाने पर भी होम गवर्नमेन्ट ने उन्हें स्वीकार न किया। हम उन घटनाओं का वर्णन कर ही चुके हैं जिनके कारण फाउलर कमेटी की स्थापना हुई और उन बातों का भी विवरण दे चुके हैं जो चांदी के सिक्के मुफ्त में ढालने की टकसालों के बंद कर देने के उपरान्त हुईं। किन्तु इसके पूर्व कि हम भारत में सोने की आवश्यकता पर आलोचनात्मक रीति से विचार करें, यह उचित जान पड़ता है कि पाठक भारत सरकार के कतिपय सर्वोच्च अधिकारियों की सम्मति को जान लें जो उनने भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता के सम्बन्ध में दी है। यू० पी० के गवर्नर और तत्कालीन अर्थ सचिव सरजेम्स मेस्टन ने सन् १९१० में

बजट पर भाषण देते हुए कहा था, "हमारे उद्देश्य और कार्यपथ सरल हैं, विशुद्ध हैं और अपने आदर्श की उन्नति में अधिक विरोध भाव की आवश्यकता नहीं पड़ी है। फाउलर कमेटी के समय से यह उन्नति सच्ची और अटूट रही है। इस आदर्श तक पहुंचने के लिये अभी एक पग और आगे बढ़ना है। हमने भारत वर्ष को संसार के सोने के देशों से अर्थात् जहां सोने का सिक्का प्रचलित है उन देशों से सम्बद्ध कर दिया है, हम सोने के एक्सचेंज स्टैंडर्ड तक पहुंच गये हैं और उसे हम धीरता पूर्वक उन्नत और विकसित कर रहे हैं। **अन्य और अन्तिम सीढ़ी सच्ची स्वर्ण-मुद्रा प्रचलन है। और मुझे पूर्ण आशा है कि समय पर वह अवश्य किया जायगा; किन्तु हम उसे विवश नहीं कर सकते।**" यही विचार १६ मई सन् १९१२ में भारत सचिव को लिखे गये एक खरीते मे भारत सरकार द्वारा प्रकट किये गये थे। "हम जानते हैं और यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि भारत में चांदी के सिक्कों की टकसालों का बन्द होना भारत में सोने के सिक्के का प्रचलन होने का युक्ति युक्त और स्वाभाविक परिणाम था। ऐसा करने से अधिकारी वर्ग द्वारा मुद्रा प्रणाली के समुचित विकाश के लिये जो मार्ग ग्रहण किया गया है उसमें एक पग आगे बढ़ने में सहायता मिलेगी और भविष्य में मुद्रा प्रणाली को स्थिर रखने में विशेष सहायक होगी। स्वर्ण मुद्रा प्रचलन के हमारे प्रस्ताव के साथ भारतीय जनता की पूर्ण स्वीकृति है।"

फाउलर कमेटी की सम्मति के अनुसार भारत सरकार नें यह स्वीकार किया कि अंग्रेजी स्टेंडर्ड सिक्के अर्थात् सावरिन और अर्द्ध सावारिन भारत मे ढाले जायें। इस पर होम गवनमेंट ने बहुत विरोध किया। यदि भारत की टकसालों में अंग्रेजी सिक्का ढाला जाये तो वे रायल मिन्ट की शाखाएं होनी चाहियें और उसी के नियमानुसार उन्हें काम करना चाहिये जो असंभव न था। यदि भारतीय टकसालें स्वतन्त्र बना दी जायें तो भारत में सोने का सिक्का चलाने में बड़ा व्यय होगा। इस पर भारत सचिव ने भारत सरकारको लिखा (८ अक्टोबर सन् १९१२) कि भारत में अंग्रेजी सिक्का ढालने के स्थान पर १०) रु० मूल्य का कोई भारतीय सिक्का ही ढाला जाये और भारत सरकार ने अपने प्रस्ताव को बिल्कुल अस्वीकार किये जाने की अपेक्षा यही बहु-व्ययी कार्य करना स्वीकार किया। किन्तु इस पर भी ब्रिटिश खजानों के विरोधों ने बौछार की और अन्त में एक रायल कमीशन की स्थापना इसलिये की वह सम्पूर्ण भारतीय मुद्रा प्रणाली का निरीक्षण करे और उक्त प्रस्ताव पर अपनी सम्मति दे।

चेम्बरलेन कमीशन ने यह परिणाम निकाला कि, "यह भारत को हित कर नहीं है कि वहां सोने के सिक्के का प्रचलन करने के लिये उत्साह दिलाया जाये। हम भारत में सोने के सिक्के का प्रचलन हानिकार और व्यर्थ समझते हैं। भारत को अपनी मुद्रा पद्धति में मितव्यय का खयाल रखना चाहिये। किन्तु भारतीयों को मुद्रा के विविध आर्थिक रूपों के उपयोग में

शिक्षा देते हुये सरकार को इस सिद्धान्त पर चलते रहना चाहिये कि वह लोगों को मुद्रा का इच्छित रूप दे सके।" किन्तु ये बातें केवल भारतवासियों का मुँह पोछने के लिये हैं। भारतीय मुद्रा पद्धति की कृत्रिमता इस समय बड़े २ सिद्धान्त वादियो के समर्थन द्वारा वैज्ञानिक रूप को धारण करने की अवस्था मे आ गई है। अब उसकी कृत्रिमता अधिक काल तक ठहर नहीं सकती।

अब जरा उन लोगों की बातों पर भी ध्यान देना चाहिये जो इस बात के समर्थक हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यबहार के लिये चिह्न सिक्का लेना चाहिये और एक्सचेंज को रखने के लिये स्वर्ण-कोष रहना चाहिये। (१) पहली बात यह कही जाती है कि यदि हमारी सम्पूर्ण मुद्रा प्रणाली स्वर्ण मुद्रा की ही होगी तो हमें आर्थिक दुरवस्था के समय बाहर भेजने के लिये यथेष्ट परिमाण में सोना न मिल सकेगा। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि ऐसे समय में लोग दशा को सुधारने के लिये बैंकों में परिवर्तनार्थ सोना लाने के बदले उसे संग्रह करेंगे। यद्यपि पश्चिम के शिक्षित लोग ऐसा न भी करेंगे किन्तु भारतवर्ष के सैकड़ो वर्ष की आदतों के गुलाम उसे संग्रह किये बिना मानेगे? इसके उपरान्त यह कहा जाता है कि भारतीय मुद्रा प्रणाली के सुधारकों को इंग्लैड और उसकी स्वर्ण मुद्रा प्रणाली का आदर्श उदाहरणार्थ ग्रहण न करना चाहिये। इंग्लैंड एक ऋणदाता प्रदेश है और वह ऐसी अवस्था मे केवल अपना ऋण इकट्ठा करके ही

दशा को सुधार सकता है। इंग्लैंड बैंक में स्वर्ण कोष द्वारा यह कार्य बड़ी सरलता से किया जाता है। इंग्लैंड बैंक डिसकाउन्ट की दर बढ़ा देता है और जिससे कुछ काल के लिये विदेशी ऋण में रुकावट डाल देता है। इसके अतिरिक्त इंग्लैंड में चेक पद्धति के पूर्ण प्रचार ने मुद्रा और नोटों तक को गौण कर दिया है। इन सब बातों में भारत इंग्लैंड की बराबरी नहीं कर सकता। भारत स्वभावतः ही ऋणी है और इंग्लैड स्वभावतः ही ऋण दाता है। भारत के ९० प्रति सैकड़ा मनुष्य अशिक्षित हैं अतः वे द्रव्य के दूसरे रूप नोट अथवा चेक का महत्व नहीं जान सकते। इंग्लैंड का प्रत्येक व्यापारी अपना बैंकका हिसाब रखता है और इस प्रकार इंग्लैंड में बैंकिंग का बहुत अधिक प्रचार है; किन्तु भारतवर्ष में यह अपनी शैशवावस्था में ही है।

(२) दूसरे भारतवासी स्वर्ण मुद्रा नहीं चाहते। क्योंकि कोई भी सोने का सिक्का जो बनाया जायगा उनके लेन देन के कार्य में अधिक मूल्य होगा। उदाहरण के लिये यह कहा जाता है कि सरकार ने सन् १९००—१९०२ में सावरिन प्रचलन करने का प्रयत्न किया था किन्तु कुछ ही काल पश्चात् एक दम बहुत से सावरिन भुनाये जाने के लिये खजानों में लौट आये। बहुत से गला डाले गये और बहुत थोड़े प्रचलन में शेष रहे।

(३) तीसरे यदि भारत स्वर्ण मुद्रा पद्धति और प्रधान स्वर्ण मुद्रा प्रचलन का आरम्भ भी करेगा तो उसे यथेष्ट सोना मिलना कठिन होगा। क्योंकि भारतवर्ष में आवश्यकता की पूर्ति के योग्य

परिमाण में सोना उत्पन्न नहीं होता। फिर यदि भारत सोना खरीदेगा तो सोने की क़ीमत रुपये के रूपमें बढ़ जायगी और इस से भारतवर्ष को सरासर बहुत हानि होगी।

उपरोक्त तीनों बातें हमारी अपनी कल्पना से अथवा अनुमान द्वारा उद्भूत नहीं हुई हैं प्रत्युत् ये बातें मुद्रा प्रणाली के प्रसिद्ध ज्ञाता और नेता प्रौ० जे० एम० कीन्स की कही हुई हैं। जो व्यक्ति श्रीयुत् कीन्स की भारतीय करन्सी और फाइनेन्स पर लिखी गई पुस्तक का अवलोकन करेगा उससे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि श्रीयुत् कीन्स ने जिन आधारों और तर्कों का अवलम्बन किया है वे चेम्बरलेन की तर्कप्रणाली से बहुत कुछ समानता रखते हैं। वर्तमान प्रणाली की समर्थक ये तीनों बातें रायल कमीशन रिपोर्ट के पृष्ठों में आप पा सकेंगे अथवा प्रो० कीन्स की Indian Currancy & Finance नामक पुस्तक मे देख सकेंगे।

अब हमें इन तीनों बातों पर ज़रा विचार करना आवश्यक है। पहली बात तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत के स्थान का भ्रम पूर्ण निश्चय है। यद्यपि भारतवर्ष प्रति वर्ष अधिक ऋण लेता है, किन्तु उसका वार्षिक व्यापारिक अवशेष (बकाया) उसके प्रतिकूल नहीं रहता और इसीसे वह ऋणी देश नहीं कहा जा सकता। होम चार्जेज जैसी बड़ी रकम को देदेने पर भी भारत का निर्यात आयात से कहीं अधिक रहा है। यदि हम पिछले ३०।३५ वर्षों के अंकों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि

दो महा युद्ध और दो बड़े अकाल तथा अनेकानेक कठिनाइयों के होते हुए भी भारत का निर्यात परिमाण आयातसे कहीं अधिक रहा है। यदि हम केवल होम चार्ज की तादाद निकाल दें तो इस कमी को पूरा करने के लिए भारत को कभी २ हीरे और जवाहिरात बाहर भेजना पड़ते हैं। अतएव यद्यपि हम यह बात मानते हैं कि भारत इंग्लैंड से अनेक बातों में बिल्कुल भिन्न है और यद्यपि मुद्रा के सम्बन्ध में इंग्लैंड का आदर्श हमारे लिये सबसे निकृष्टहै तथापि हमें यह मानना चाहिये कि कम से कम स्वर्ण के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में भारत भी इंग्लैंड की तरह संदिग्ध अवस्थाओं में अपनी ठीक २ दशा रख सकेगा। महायुद्ध के तीन चार वर्षों में भारत-वर्ष समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ हो सका यही नहीं साम्राज्य के प्रति उसने अतिरिक्त सहायता प्रदान की। अतःएक यही बात—इस बात का सच्चा प्रमाण है कि भारतवर्ष के सोने के अपने साधन हैं। यह अनुचित न होगा कि होमचार्ज मिला-कर भी यदि प्रति दसवें वर्ष हिंदुस्तान का बक़ाया उसके खिलाफ़ हो तो स्वर्ण कोष, स्वर्ण मुद्रा कोष तथा सरकारी कोषों का सोना उसकी पूर्ति के लिये यथेष्ट होगा। फिर भी यदि एक वर्ष से अधिक उसकी प्रतिकूलता बनी रहे, यद्यपि ऐसा होना बहुत कम संभव है, तो भारत वर्ष ऋण द्वारा उसकी पूर्ति कर सकता है। और इस प्रकार अपनी साख़ बनाए रह सकता है। इसके अतिरिक्त हम यदि यह भी मानलें कि भारत वासी सोना जोड़ने लगेंगे तो भी हमें यह जान लेना चाहिये कि उसका

परिमाण औचित्य से परे न होगा । यह कहना कदापि युक्ति संगत नहीं है कि भारतीय ऐसे दरिद्र हैं कि वे शीघ्र ही सोना बटोरने लगेंगे अतः वे सोने का सिक्का पाने के योग्य नहीं हैं। ऐसा बहुत कम होगा और वह भी वे ही लोग करेंगे जो सिक्का गलाने का काम करते हैं। किन्तु वे भी योग्यता से बाहर ऐसा नहीं कर सकते। यदि साधारण दशा में बक़ाए की रक़म भारत के अनुकूल डेढ़ करोड़ और ढाई करोड़ के बीच में हो जो प्रायः सोने के रूप में ही दी जाती है तो इतना सब सोना लोगों द्वारा नहीं एकत्र किया जा सकता । अधिकांश बैंकों अथवा सरकारी ख़जानों में लौट आयेगा और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन के लिये यथेष्ट परिमाण में संचय रहेगा । इसके अतिरिक्त आर्थिक दुरवस्था में कृत्रिम मुद्रा प्रणाली की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये तो और अच्छे बैंकिंग के सिद्धान्त होने चाहियें । एक श्रेष्ठ प्रणाली होनी चाहिये जो देश की बाहरी हिसाब ठीक कर सके। वास्तव में भारत में बैंकिंग इस समय शैशवावस्था में है।

दूसरी बात के सम्बन्ध में हम प्रो० कीन्स की पुस्तक से निम्न लिखित अंक उद्धृत करते हैं । यद्यपि उनने सरकारी कागज़ों से इस हानिकारक प्रमाण को सिद्ध कर दूर कर देने का प्रयत्न किया है तथापि हम देखेंगे कि उत्तर वास्तव में उत्तर देने योग्य नहीं ।

वर्ष	सोने के स्टाक में कुल अतिरिक्त योग अर्थात् अयात निर्यात की कुल तादाद १ = (२)+(३)	पेपर करन्सी कोष और खजानों में सोने का कुल अतिरिक्त योग २	जनता के पास के सोने में अतिरिक्त योग ३ = (४)-(५)	जनता के पास सोने की ईंट में अतिरिक्त योग ४	जनता के पास सावरिन में अतिरिक्त योग
	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड
१९०१—२	३,२२३,०००	५०००	३,२२८,०००	२,२६१,०००	९६७,०००
१९०२—३	७,८८२,०००	२,८७०,०००	५,०१२,०००	२,८१४,०००	२,१९८,०००
१९०३—४	८,९६३,०००	९४४,०००	८,०१९,०००	४,७४१,०००	३,२७८,०००
१९०४—५	८,८४१,०००	३८,०००	८,८०३,०००	५,८६६,०००	२,९३७,०००
१९०५—६	२,६९८,०००	६,८७०,०००	९,५३८,०००	५,८०६,०००	३,७३२,०००
१९०६—७	१२,०६१,०००	१९३,०००	१२,२५४,०००	७,०९८,०००	५,१५६,०००
१९०७—८	१३,६७७,०००	९९३,०००	१४,६७०,०००	७,२४३,०००	७,४२७,०००
१९०८—९	५,०२२,०००	२,८४३,०००	७,८६५,०००	४,४२२,०००	३,४४३,०००
१९०९—१०	१६,६२०,०००	६,३४७,०००	१०,२७३,०००	७,४०७,०००	२,८६६,०००
१९१०—११	१८,१५३,०००	७१,०००	१८,०८२,०००	९,९९१,०००	८,०९१,०००
१९११—१२	२७,३४५,०००	९,३४७,०००	१७,९९८,०००	९,११७,०००	८,८८१,०००
१९१२—१३	२४,५५१,०००	४,२३१,०००	२०,३२०,०००	९,३२०,०००	११,०००,०००
कुल	१४९,०३६,०००	१२,९७४,०००	१३६,०६२,०००	७६,०८४,०००	५९,९७६,०००

इस प्रकार भारत में खपे हुए १४ करोड़ ९० लाख पौंडों में १२ वर्षों में कुल १३ करोड़ ६० लाख पौंड अर्थात् ९० प्रति सैकड़ा से अधिक जनता द्वारा लिये गये। इनमें से ६ करोड़ अर्थात् ४४ प्रति सैकड़ा के सिक्के थे और शेष की ईंटें थीं। इसके प्रतिकूल एक वर्ष का अनुभव जब कि ६,७५०,००० पौंड प्रचलन में रखे गये थे जिनमें से आधे सरकार के पास लौट आये, भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता सिद्ध करने के लिये प्रमाण रूप नहीं कहा जा सकता। सोना बाहर भेजने वाले चाहे जितनी अधिकता करें हम यह कदापि नहीं कह सकते कि वे वास्तव में भारत से मुद्रा बाहर भेज सकने में सफल हुए हैं।

करन्सी के हिसाब का पूर्ण रूप से विचार करने पर जाना जाता है कि सन् १९१४ में प्रचलन के ३०० करोड़ रुपयों में कुल १८० करोड़ के रुपये थे, ६० करोड़ के नोट थे और शेष प्रचलन में सोने के रूप में प्रस्तुत थे। यदि हम यह अंक स्वीकार करलें। आयात सोने के सिक्कों में से $\frac{2}{3}$ भाग महायुद्ध के पूर्व प्रचलन में थे। किन्तु यह परिणाम न्यूनता सूचक ही है बहु-दर्शक नहीं।

भारत में स्वर्ण मुद्रा प्रचलन के विरुद्ध अन्तिम आक्षेप का उत्तर उपरालिखित सूची से ही मिलता है। यद्यपि भारत वर्ष की अपनी सोने की उत्पति बहुत थोड़ी है। वह २,१००,००० पौंड से कुछ ही अधिक है तथापि अनुकूल व्यापारिक अवशेष [बक्का-

या] के कारण यहां सोने का स्थिरता पूर्वक प्रचलन हो सकता है। शताब्दी के प्रथम बारह बर्ष तक यदि भारत सरकार अपने सोने के सिक्के ढलवाती तो पेपरकरन्सी कोष तथा कोष के हिसाब में ५ करोड़ पौंड सुरक्षित रखने के अतिरिक्त वह १० करोड़ पौंड के सिक्के प्रचलन में ला सकती थी। सरकार यह सब बिना चांदी खर्च किये और इस प्रकार व्यर्थ में भारत को हानि पहुँचाये बिना तथा अतिरिक्त सोना खरीदे बिना ही बड़े मज़े से कर सकती थी। यदि सन् १९०० में ही सरकार सोने का सिक्का चला देती तो प्रत्येक रुपये को सोने के रूप में परिवर्तित करने का भय न होता। १० करोड़ के रुपये और ५ करोड़ के नोट अवश्य ही प्रचलन में रहने चाहियें। अतः हमें स्वर्ण मुद्रा प्रचलन के लिये ५ करोड़ सोने के सिक्के चाहियें; और यदि यह तादाद पांचसाल के लिये बनी रहे--इस बीच में रुपया चालू सिक्का माना जाये और पश्चात् केवल चिह्न सिक्का बना दिया जाये--तो हमें अपेक्षित सोने की प्राप्ति के लिये हमारा साधारण निर्यात ही अपेक्षाकृत अधिक होगा।

चेम्बरलेन कमीशन ने भारतवर्ष में सोने के सिक्के की आवश्यकता के पक्ष में ये बातें कही हैं:—"(१) सोना रुपये की अपेक्षा प्रचलन का श्रेष्ठ माध्यम है। (२) स्वर्ण-मुद्रा पद्धति आदर्श मुद्रा प्रणाली की विधायक है। (३) सोने का सिक्का चलने से कुछ गौरव प्रकट होता है किन्तु चांदी का सिक्का कम उन्नत लोगों का चिह्न है। [४] एक्सचेंज अथवा

विनिमय के लिये अधिकांश सोने का रहना अच्छा है। (१) रुपयों का निरन्तर ढलता जाना आक्षेप योग्य है और सावरिन के अधिक प्रचार से दूर किया जा सकता है। (६) जब तक भारतवर्ष में स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन न होगा तब तक वहां केवल कृत्रिम मुद्रा प्रणाली रहेगी। (७) भारतवर्ष में सोना खपाने के लिये उत्तेजन दिया जाना चाहिये जिससे सोने की कीमत में घटती होने से साधारण रूप से संसार की रक्षा हो सके।

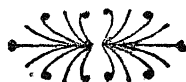
जैसी कि आशा की जाती है कमेटी इन सब बातों के लिये प्रयत्न करती जान पड़ती है; किन्तु उनके उत्तर कदापि संतोषप्रद नहीं। सबसे पहले ये यही बात सामने रखते हैं कि भारत जैसे देश के लिये छोटे व्यवहार में सोने का सिक्का चांदी की अपेक्षा कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। इससे कम से कम यह तो सिद्ध होता है कि अधिक परिमाण में लेन देन के लिये सोने का सिक्का आवश्यक है। दूसरी बात जो वे सामने रखते हैं संसार का इतिहास है और उसके द्वारा वे हमें यह बतलाने की चेष्टा करते हैं कि जिन देशों में स्वर्ण मुद्राओं का प्रचार हुआ है वहां नोटों के प्रचलन में गहरा धक्का पहुंचा है। कमीशन का कथन है कि नोट यदि वे तत्काल भुनाये जा सकें तो प्रचलन के सब से सुविधा जनक माध्यम हैं। पर वे यह कहना भूल जाते हैं कि नोट प्रचलन के द्रव्य का एक प्रकार का रूप होने के कारण इस लिये विश्वासनीय हैं कि साधारण जनता उन पर अपना विश्वास रखती है। यदि अधिकारी नोट की रक़म से कुछ कम रक़म

भुनाने पर देंतो वह विश्वास घात की पात्र होगी। अतएव कमीशन की यह धारणा कि सोनेके सिक्कों के प्रचार से नोटों के प्रचार मे धक्का पहुँचेगा ठीक नहीं है। जब कि रुपयों के नोट इस तरह सर्वप्रिय हो रहे हैं तो जिन नोटों का भुगतान सोने में होगा वे तो निःसन्देह लोक प्रिय होंगे ही। जैसे २ उद्योग धन्धों का तथा कारखानों का प्रचार हो रहा है उसीके साथ २ नोटों का भी प्रचार बढ़ रहा है और बैंकों के बढ़ने से इसका प्रचार और भी बढ़ेगा, कारण कि लोगों का इस पर विश्वास जमता जा रहा है। यह कदापि संभव नहीं है कि सोने के चलते ही नोटों का प्रचार रुक जायेगा। बल्कि स्वर्ण सिक्के साथ ही यदि नोट का सम्बंध हो जावे तो जनता उसे विशेष विश्वास की दृष्टि से देखेगी।

एक आक्षेप यह है कि सरकार यदि आज स्वर्ण मुद्रा का प्रचार करे तो उसे चांदी के लिये जितने रुपये प्रचलित हैं उन सब को सोने के सिक्कों में बदलना होगा। इसके लिये बहुत सोने की आवश्यकता होगी और इतना सोना खरीदा जावे तो निःसन्हेह सोने का भाव तेज हो जावेगा और चांदी की दर गिर जावेगी! एक तो सरकार के पास इतना रुपया नहीं है, दूसरे चांदी के भाव गिरने से और सोने के मूल्य में बढ़ती होने के कारण सरकार की आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जायगी और इस कारण भी सोने के सिक्कों का प्रचार सम्भव नहीं है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो इस आक्षेप में कुछ भी सार नहीं है।

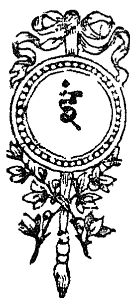
कोई सरकार इस बात के लिये बाधित नहीं है कि एक दम सब सिक्कों का परिवर्तन सोने में कर दे।

अभी केवल इतना करने की आवश्यकता है कि प्रचलित चांदी के सिक्के और नये सोने के सिक्कों का परस्पर मूल्य नियत कर दिया जाय और दोनों सिक्के बराबर चालू रहें। हाँ, नये सिक्के अधिक सोने के ही बनाये जायें। धीरे २ आप ही सर्वत्र सोनेके सिक्कों का प्रचार हो जायगा। स्वर्ण विनिमय कोष में जो सार्वजनिक रुपया जमा है वह इस काम में लाया जा सकता है और धीरे २ स्वर्ण मुद्रा सब जगह चलाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे यहां सोना भी काफी निकलता है। प्रति वर्ष ३ करोड़ का सोना निकाल कर साफ किया जाता है। फिर जो व्यापारी हमारे यहां माल खरीदेंगे उनसे भी हम सोना ही लेंगे और इस तरह सिक्के के लिये थोड़े समय में पर्याप्त सोना भी मिल सकता है। अभी हाल में १ अरब ५० करोड़ के नोट प्रचलित रहेंगे-- केवल ७५ करोड़ के सोने के सिक्के चला देने से आसानी से हमारा काम चल सकेगा। पांच वर्ष तक इसी तरह सोने के सिक्कों को बढ़ाते जायेंगे और साथ में चांदी के रुपये भी चलते रहेगे। पांच साल के उपरांत चांदी के सिक्के केवल चिन्ह सिक्के कर दिये जायंगे और फिर मुख्यत: सोने ही का सिक्का चलने लगेगा।



१० वां प्रकरण

इंग्लैंड में सोने के सिक्कों का प्रचलन।



ग्लैंड में सोने के सिक्के का प्रचलन सुमुहूर्त से प्रारंभ होता है। सन् १७१७ ई० में गिन्नी का भाव २१ शिलिंग का होगया और इसका कारण सर ऐज़क-न्यूटन की वह रिपोर्ट जिसके मन्तव्य के अनुसार स्वर्ण मुद्राओं के प्रचलन का विरोध करना था।

प्रारंभ में हमारे यहां चांदी का सिक्का माध्यम था, जो सेक्सन पौंड की धातु के तौल पर बनाया गया और शिलिंग जो पौंड का ६६ वां भाग तोल में है पौंड की चांदी की तौल का २० वां हिस्सा है। १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही देश में निर्बाध रूप से सोने का प्रचार हुआ है किन्तु चांदी से उसकी तुलना करने पर सोने का मूल्य बदलता रहा है। १८ वीं शताब्दी के प्रारंभ तक चांदी के सिक्कों का अधिकांश में प्रचलन था किन्तु सन् १६९६ में चांदी के सिक्कों के निर्माण के समय सोना अपने से कम मूल्य की धातुओं को प्रचलन से हटाने लगा और इस प्रकार एक भीषण दशा उपस्थित हुई। महाराज विलियम तृतीय के शासन कालमें चांदी के सिक्कों का पुनर्निर्माण इसलिए आवश्यक समझा गया कि चांदी के सिक्कों की दशा बहुत बिगड़ रही

थी और वे अपनी असली तौल से ३० से ५० प्रति सैकड़ा कम तौलमें चल रहे थे। इसी से गिन्नी के भाव में परिवर्तन हुआ। सन् १६६५ में पहले पहल गिन्नी चलाई गई थी तब उनका भाव २० शि० था लेकिन चांदी के मूल्य में घटती देने के कारण गिन्नी का मूल्य बढ़ गया। जिन लोगों के पास गिन्नी थी उनने किसी २ दशा में तो ३० शि० से कम में देना स्वीकार ही न किया।

चांदी के सिक्कों के पुनर्निमार्ण पर राष्ट्र ने जिसमें २७०००००० पौंड व्यय हुआ, गिन्नी का भाव घट कर २ शि० तक पहुँचा; किन्तु सार्वजनिक भय के कारण चांदी के नये सिक्कों के इस व्ययात्मक प्रचलन से वे शीघ्र ही प्रचलन से गायब होगए और देश में सोने का प्रचार होगया।

ग्रेषम का सिद्धान्त अपने दूसरे रूप में कार्य कर रहा था। सोने का भाव बढ़ गया था अतः वह प्रचलन से चांदी को हटा रहा था। प्रारंभ में यह कठिन बोध होता है कि सोने का भाव किस तरह बढ़ा; क्योंकि गिन्नी अनिश्चित और परिवर्तिन भाव में चलती थी और सरकार ने दोनो धातुओं का परस्पर मूल्य नियत करने का कोई प्रयत्न किया नहीं था। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सोने का भाव बढ़ गया? इस प्रश्न का उत्तर इस पत्र से मिल जायगा जो ट्रेज़री बोर्ड ने एक्सचेकर (Exchequer) को लिखा था:—

२५ अक्टूबर, सन् १६१७

महाशय,

विगत गुरुवार के गज़ट में जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उसके अनुसार सम्राट् के कोष के लार्ड कमिश्नरों की आपको सूचना है कि आप एक्सचेकर के पत्रों की रसीद में यह सूचित करें कि वे २२ शि० के हिसाब से गिन्नी स्वीकार करते हैं।

ह:— डब्ल्यू एम. लॉंडेस

इसी पत्र के कारण गिन्नी का भाव २२ शि० होगया और इसी हिसाब से सोने के भाव में बढ़ती हुई।

इस सम्बन्ध में सर ऐजक न्यूटन से अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए कहा गया। सन् १७१७ में न्यूटन की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है वह बड़ी ही बुद्धिमत्ता पूर्ण है। न्यूटन ने दिखलाया कि फ्रांस, हालैंड, इटली, जर्मनी, पोलैंड, डेन्मार्क और स्वीडन कहीं भी सोने चांदी के मूल्य का अनुपात १५:१ से अधिक नहीं है और इस हिसाब से गिन्नी का भाव चांदी के रूपमें २० शि० ८॥ पेंस होगा। लेकिन इंग्लैंड में गिन्नी २१ शि० ६ पेंस० से भी ज़्यादा बढ़ गई थी अतएव यह एक लाभ-जनक व्यापार था कि इंग्लैंड को सोना भेजा जाय और वहां से चांदी खरीदकर इन देशों को भेजी जाय।

न्यूटन की सम्मति इस प्रकार थी:—यदि इंग्लैंड में सोने का भाव वही कर दिया जाय जैसा कि अन्य देशों में है तो

फिर यूरुप के अन्य देशों को चांदी बाहर भेजने के लिए कोई प्रलोभन न होगा । और इस अन्तिम बात को पूरा करने के लिए यह उचित होगा कि गिन्नी में से १० या १२ पेंस कम कर दिए जायँ । पर यदि हालमें केवल ६ पेंस कम किए जायेंगे तो वह चांदी को बाहर भेजने या गलाने के प्रलोभन को कम कर देगा।

इसके पश्चात् राजकीय विज्ञप्ति प्रकाशित हुई जिस के अनुसार गिन्नी का भाव २.१ शि० कर दिया गया । तथापि यह कमी भी सर्वथा अनुचित थी, जैसा कि आगे चल कर मालूम होगा । यह केवल भूल थी। सन् १७१७ से १८१६ तक सोना और चांदी दोनों ही किसी भी परिमाण तक प्रचलन के सिक्के थे। दोनों प्रकार के सिक्कों को मुफ्त में ढालने के लिए टकसालें खुली हुई थीं और दोनों निश्चित करके अनुपात से प्रचलन में बने रहे । द्विधातु मुद्रा प्रणाली के ये तीन अनिवार्य चिन्ह हैं ।किन्तु इस समय हो क्या रहा था ? कोई भी चांदी को टकसाल में सिक्के ढलवाने के लिए न लाता था क्योंकि उसका मूल्य सिक्कों की अपेक्षा ईंट के रूपमें अधिक था। यदि किसी व्यापारी के पास पूर्व से चांदी आती थी तो उसके लिए यह लाभप्रद था कि वह उसका सोना लेकर सिक्का ढलवाये न कि चांदी सीधी टकसाल को भेजदे।

यूरुप में वह इतना सोना ले सकता था, जिससे वह २० चांदी के शि० और ८ पें० में एक गिन्नी बना सकता था । यदि

वह अपनी चांदी के सिक्के बनवा लेता तो उसे एक सोने की गिन्नी के लिए २१ शि० देना पड़ते।

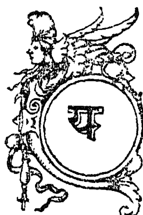
इसका सब से बड़ा परिमाण यह हुआ कि चांदी के सिक्के प्रचलन से हट गये यहां तक कि विनिमय कार्य के लिए भी उनकी कमी पड़ने लगी। जो कुछ बच रहा था वह इस प्रकार नष्ट हो गया कि सन् १७७४ में यह प्रकट किया गया कि चांदी प्रचलन माध्यम २५ पौंड से अधिक परिमाण के लिए रहे और वह भी तौल में गिनती में नहीं।

इस प्रकार अंग्रेजी इतिहास में मुद्रा प्रणाली में सोने का न केवल प्रचार ही हुआ प्रत्युत् वह मुद्रा का प्रधान अंग बन गया। राष्ट्र की इच्छा के विरुद्ध सोने ने चांदी को दबा दिया। लेकिन फिर लोग सोने को ही चाहने लगे। जब सन् १८१६ में मुद्रा प्रणाली का पुनर्संगठन हुआ तो किसी ने चांदी को पहले के स्थान पर लाने के लिए न कहा। जो कुछ चिरकाल से व्यवहार गत था उसी को सन् १८१६ के एक्ट ने नियामित बना दिया। सन् १८१६ के एक्ट ने सिक्कों को हिसाब की गिनती के अनुसार इकाई से लेकर ठेठ तक सुसंगठित कर दिया और तदनुकूल गिन्नी तक कम मूल्य के सिक्के द्वारा परिवर्तित कर दी गई।



११ वां प्रकरण।

द्वि धातु मुद्रा प्रणाली—फ्रांस देशीय पद्धति।



ह एक बड़ा जटिल प्रश्न है कि प्रचलन में एक धातु का सिक्का हो या दो धातुओं का। यह प्रश्न यहां तक जटिल हो गया है कि इसके सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन हो गया है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि विषयका भली भांति अध्ययन करने पर उसका परिज्ञान अवश्य हो जायगा। साधारण लोगो द्वारा बार २ यह प्रश्न उठता है कि सिक्के के मूल्य का निश्चित परिमाण किस प्रकार हो सकता है; पर इस प्रकारके सिक्के की पूर्ति होना कठिन है।

इंग्लैंड में केवल सोनेका परिमाण निश्चित करनेवाले सुधारक इस बात को अस्वीकार न करेंगे कि सोनेके मूल्य में वस्तुओं के प्रति आम तौर पर परिवर्तन हुआ है। साथही वे इस बात का भी दावा नहीं कर सकते कि उनके निर्णयानुसार सिद्ध स्वर्ण का परिमाण ही निश्चित परिमाण है।

द्विधातु—प्रचलन के पक्षपाती, जिनमें फ्रांस प्रमुख है, कहते हैं, कि कुछ निश्चित शर्तों के मुताबिक, सोने चांदी की एकता और मूल्य के स्टेंडर्ड में केवल सोने की अपेक्षा दोनों का सम-

बन्ध कहीं विशेष प्रामाणिक होगा। इस पद्धति का स्पष्ट निरीक्षण नहीं किया जा सका; क्योंकि ये शर्तें अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों द्वारा चाहे सम्भव हों पर अभी तक उनके कार्यरूप में परिणित होने का अवसर नहीं आया है।

यह तो किसी प्रकार किसी हद्द तक राष्ट्रीय आकांक्षाओंका विवाद है। व्यवहार कुशल इंग्लैंड अपनी बात पर दृढ़ रहा। अपनी भूल को देखते हुये भी उसने उस प्रथा को स्वीकार न किया, जिसका अन्य देशों ने पूरा २ पालन किया। उसने इस दूसरी पद्धति के पक्ष में कार्य करने से साफ़ इन्कार कर दिया, यद्यपि यह पद्धति सिद्धान्त में उपयोगी और व्यवहार में सफलीभूत सिद्ध नहीं हुई है।

फ्रांस, जो नैयायिक एवं प्रयोगशील है, लेटिन आदि के सहयोग से द्विधातुओं के सिक्के जारी करने के प्रयत्न में रहा। उसने इस पद्धति को प्रचलित कर अन्य देशीय व्यवसाय को रोकना चाहा। अन्तर्राष्ट्रीय द्विधातु–पद्धति सम्मिलत कार्यों द्वारा यूरुप अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित करने का भरसक प्रयत्न किया।

द्वि–धातु मुद्रा प्रथा में निम्न लिखित तीन बातों का होना परमावश्यक है:—सोने और चांदी का हाजर प्रचलन सरकार द्वारा निश्चित अनुपात से होना; दोनों धातुओं के सिक्के समान नियमों पर तयार करने के लिये टकसालें खोलना; दोनों धातुओं के लिये अपरिमित प्रचलन माध्यम होना।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस ने इन सिद्धान्तों पर अपने यहां की कानूनी प्रचलन का काम प्रारम्भ किया। सातवें जर्मिनल कानून (१८०३ ई.) के अनुसार इस प्रथा का का प्रादुर्भाव हुआ और दोनों धातुओं के प्रमाण की राशि १५½ : १ नियत हुई। आगे चल कर यह कठिनाई उपस्थित हुई कि सोने चांदी के बाजार के मुताबिक ही कारखाने को भी रखना पड़ता था। परन्तु ग्रेपम के सिद्धान्तानुसार दोनों धातुओं के परिमाण में अन्तर पड़ने लगा। अर्थात् अधिक मूल्य वाली धातु कम मूल्य की धातु को प्रचलन से हटाने लगी। इस प्रकार सिद्धान्त में जो द्विगुण माध्यम थी व्यवहार में परिवर्तन माध्यम होने लगा। कभी तो सोने के सिक्कों का ढेर हो जाता और कभी चांदी के सिक्कों का। बहुत थोड़े काल तक दोनों धातुएँ समान रूप और समराशि में प्रचलित रहीं। इसका विवरण फ्रांस देश के उन्नीसवीं शताब्दी के मौद्रिक लेखे से बताया जा सकता है। नीचे हम दश और पांच वर्ष के भीतर का सोने चांदी की सिक्कों का औसत परिमाण देते हैं:—

वर्ष	औसत बाजार भाव
१८११–२०	१५·५१ : १
१८२१–३०	१५·८० : १
१८३१–४०	१७·७५ : १
१८४१–१८५०	१५·८३ : १

१८५१–१८५५	१५·४१:१
१८५६–१८६०	१५·३०:१
१८६१–१८६५	१५-४०:१

लेखे से स्पष्ट विदित होता है कि सन् १८११ और १८५० के बीच में औसत बाजार भाव टकसाल के भाव से गिरा ही था। हुआ क्या कि चांदी का भाव बढ़ने लगा और सोना प्रचलन में से गायब होने लगा! श्रीयुत मेकाल के कथन का सार यह है कि यह प्रमाणित किया जा सकता है कि सन् १८३९ फ्रांस देश में प्रचलन में नाम के लिए भी सोना न था। यह दशा इस शताब्दी के मध्य तक बनी रही जब तक कि सोने की खोज नहीं हुई। सन् १८४८ में केलीफोर्निया की खान से सोना निकलने लगा। सन् १८५८ में आस्ट्रेलिया की खानों में से भी सोना निकलने लगा और इस प्रकार अधिक परिमाण में सोना बाहर आने लगा। यहां तक कि सन् १८३१ से ४० के बीच में सोने का जो वार्षिक औसत हिसाब लगाया गया था उसके अनुसार २,८३०,००० पौंड सोना बाहर निकाला गया था। सन्१८४१–१८५०में उसका औसत ७,९३८,००० पौंड तक पहुंच गया था और सन्१८५१--६०में वही२७,८१५,००० तक जा पहुँचा था। इतना सोना निकलने पर सोने का व्यवहार करने वाले देशों में खलबली सी मच गई। अधिक परिमाण में सोना आ जाने के कारण उसका मूल्य गिर गया।

परन्तु समय सदा एक सा नहीं रहता। इधर दक्षिण अफ्रीका में चांदी की खानों की खोज हुई। इसका फल यह हुआ:—

प्रथमतः मूल्य की अभिवृद्धि से द्रव्य की मोल लेने की शक्ति घट गई और दूसरे सोने की अपेक्षा चांदी अधिक भाग में निकलने के कारण दोनों धातुओं की औसत बाजार दर को धक्का पहुँचा, जो सन् १५५० और सन् १६५० में ११:१ से १५: १ तक जा पहुँचा था। स्वर्ण व्यवहृत देशों के प्रचलन के सर्वनाश की भयंकर आशङ्का और भविष्यद् वाणी प्रकट की जाने लगी; परन्तु सौभाग्य से स्थिति इतनी भयंकर न थी, जैसी कि समझी जा रही थी। चांदी की खानें निकलने पर उतनी हानि नहीं हुई। फिर भी यह विवाद ग्रस्त विषय रह जाता है कि सन् १८५० और १८६० के काल में भाव में जो इतनी बढ़ती हुई क्या वह सोने के कारण हुई? यह तो निर्विवाद है कि भाव अवश्य बढ़ा। मूल्य में अभिवृद्धि होना ऐसे ही विवाद ग्रस्त कारणों का फल था अतः निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता कि किस कारण ऐसा हुआ। प्रोफेसर जोवेन्स ने ५० व्यापारिक वस्तुओं के वार्षिक औसत मूल्य की अनुक्रमणिका तैयार की थी। सन् १८४९ में उनने वस्तुओं का मूल्य १०० माना सन् १८५५ में उसकी अनुक्रम संख्या १२५ होगई; सन् १८६० में वह १२४ थी और सन् १८६५ में १२१। और भी अनेक अर्थ शास्त्रज्ञों ने इस प्रकार मूल्य का तारतम्य निश्चित किया

है और उनसे भी सिद्ध होता है कि मूल्य में अभिवृद्धि थी। हम कह सकते हैं कि मूल्य की अभिवृद्धि का कारण सोने की खानों का प्रकट होना था।

दूसरी बात दोनों धातुओं के औसत परिमाण में अन्तर की है। जैसा कि ऊपर दी हुई सूची से विदित होगा यह परिमाण अत्यन्त सूक्ष्म है और ऊपर से बिल्कुल तुच्छ जान पड़ता है। पर यह क्षुद्र नहीं है क्योंकि इतने ही अन्तर से औसत बाजार भाव फ्रांस के टकसाली औसत भाव १५॥:१ से कम होगया। सन् १८५७ में के वेलियर ने Revue des Deuk mendes में लिखते हुए यह बतलाया था कि नये सोने का अधिकांश फ्रांस में खप गया। प्रत्यक्षरूप से सोने का बाजार भाव १५॥:१ से नीचे होगया। सोने की दर बढ़ने लगी और वह चांदी की प्रचलन से हटाने लगी। सन् १८२२—१८५१ तक फ्रांस ने प्रतिवर्ष बहुत बड़े परिमाण में निर्यात की अपेक्षा चांदी का आयात किया। आयात बहुत अधिक था। सन् १८१२—६४ तक दशा वैसी ही बनी रही। इसके पश्चात् आयात की अपेक्षा निर्यात का परिमाण बढ़ने लगा। जिन दिनों कोलिफोर्निया में सोने की खानों की खोज हुई और उनमें से सोना निकाला जाने लगा फ्रांस से बहुत अधिक परिमाण में चांदी बाहर भेजी गई और उसका स्थान केलिफोर्निया के सोने ने ले लिया।

इस प्रकार फ्रांस की चांदी का उपयोग दूसरे देश में हुआ और वहां सोने की खपत होती गई। अतः प्रस्तुत अंकों से

अधिक उनके अनुपात में कोई विशेष अन्तर न पड़ा, जो स्वाभाविक ही था।

चांदी की अपेक्षा सोना अधिक शीघ्रता से निकाला जाता था। फ्रांस में सोना खपता गया और उसका चांदी का स्टॉक खाली होता गया। शेविलियर के कथनानुसार इस प्रकार फ्रांस ने अन्य मूल्यवान् धातुओं के समक्ष सोने का भाव गिरने से बचाया। इसे द्विगुण माध्यम का क्षति पूरक कहते हैं। फ्रांस में उस धातु की खपत होने लगी जिसका परिमाण बढ़ रहा था और वह उस धातु का स्टॉक खाली करने लगा जिसका भाव उसकी समानता में बढ़ने लगा। सोना निकालने की दर पहले की अपेक्षा बढ़ती सी जान पड़ने लगी। फ्रांसने सोनेकी मांग जारी रखी और सोने की बढ़ती हुई पूर्ति का खर्च पूरा करता रहा।

यह क्षति पूर्ति का कार्य अवसर विशेष के लिए ही उपयुक्त और समुचित है। फ्रांस में सब सोने की खपत हो गई; क्योंकि वहां चांदी की मुद्रा प्रणाली थी। ऐसी दशा में अधिकांश सब सोना खप गया। इस प्रकार फ्रांस की द्विधातु पद्धति का बढ़ते हुए सोने पर प्रभाव के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा जा सकता है कि:—

(१) इसने दो धातुओं के बीच की बाजार भाव के अनुपात को स्थिर रखा।

(२) किसी सीमा तक इसने मूल्य को भी स्थिर रखा; क्योंकि जो चांदी फ्रांस से बाहर भेजी गई उसके फिर से सिक्के

नहीं बने प्रत्युत् कुछ चांदी पूर्व की ओर भेज दी गई और कुछ अन्य कामों में लगा दी गई। इस प्रकार कुछ धातु के सिक्कों में कमी हुई और मूल्य की बढ़ती रोक ली गई।

(३) इस पद्धति का कार्य अस्थायी रहा और ज्योंही फ्रांस में प्रचलन से चांदी हट गई त्योंही उसका कार्य बंद होगया।

(४) यद्यपि यह कार्य यूरुप के लिए लाभदायक था तथापि फ्रांस के लिए वह बहुत खर्चीला था। फ्रांस का न केवल धातु के परिवर्तन से होने वाली असुविधाओं को सहना पड़ता था प्रत्युत् तमाम सिक्कों के पुनर्निर्माण का व्यय भी उसे उटाना पड़ा। सन् १८५० से १८५७ तक फ्रांस ने १०६,०००,००० पौंड से अधिक मूल्य के सोने के सिक्के बनाये।

यहां पर हम किसी प्रकार आश्चर्य नहीं कर सकते कि इग्लैंड ने फ्रांस की पद्धति के पक्ष में अपने केवल स्वर्ण माध्यम को क्यों नहीं त्यागा? उसने द्विधातु पद्धति अपने यहां भी क्यों न प्रचलित की? इग्लैंड को छोड़ कर अन्य यूरोपीय राष्ट्रों ने जैसे बेलजियम स्विटजरलैंड और इटली आदि ने २२ दिसम्बर सन् १८६५ को इस पद्धति को स्वीकार किया। यह संधि जो उपर्युक्त देशों में हुई थी इसका मुख्य उद्देश्य जैसा कि फ्रांस के प्रधान मन्त्री ने कहा था आंशिक चांदी को विलुप्त करना था। फ्रांस और उसके अनुयायियों ने जब कि भाव में परिवर्तन होगया छोटे सिक्के न होने के कारण छोटे २ विनिमय के लिए बहुत सी

कठिनतायें उठायीं। एतदर्थ उनने अपने यहां चांदी के चि
सिक्के बनाये। ५ फ्रैंक टुकड़ों का पूरा मूल्य रखा । इन स
देशों का संघ "लेटिन यूनियन संघ" कहलाता था । उसकी
शर्तें इस प्रकार थीं:—

१—सोने के सिक्के और ९/१० शुद्धांश के पाँच फ्रैंक के टुकड़े अनिश्चित परिमाण में ढाले जायें उन सबका वजन एकसा हो और जिन २ देशों ने इस संघ की शर्तों को माना है उन सब देशों में वे समान रूप से विनिमय माध्यम माने जायँ।

(२) छोटे २ चांदी के सिक्के समानुपातिक तौल के थे, जो केवल ·८३५ विशुद्धांश के होते थे। इस प्रकार वे चिन्ह सिक्के बना लिए गये और वे बाहर जाने से रोक लिए गये। ऐसे सिक्कों की संख्या प्रत्येक देश की जन संख्या के परिमाण से परिमित थी और जो देश उन्हें ढालता था वहां ५० फ्रैंक तक वे प्रचलन माध्यम माने जाते थे।

इस संधिका मुख्य उद्देश्य छोटे २ सिक्कों की रक्षा करना था; किन्तु मुश्किल से संधिपत्र पर हस्ताक्षर हो पाये थे कि घटना उपस्थिति हुई जिसके कारण बाजार का अनुपात १५½:१ फिर हो गया।

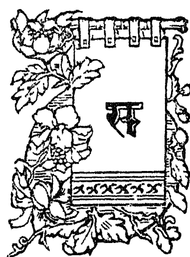
ये घटनायें दो प्रकार की थीं। एक तो नवादा तथा अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में अधिक परिमाण में चांदी का निकलना और दूसरे समस्त यूरुप में केवल स्वर्ण-माध्यम के अनुकूल आन्दो-

लन। ऐसी परिस्थिति में सन् १८६७ में पैरिस में एक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई जिसमें हालैंड को छोड़कर अन्य सब देशों ने स्वर्ण-माध्यम के पक्ष में अपनी सम्मति दी। जर्मनी के सन् १८७१ में अपने यहां के सिक्कों को फिर से ढलवा कर इस सम्मति के पक्ष में कार्य किया। उसके यहां चांदी का बहुत संग्रह था और उसने अंग्रेजी पद्धति का आदर्श स्वीकार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि फल स्वरूप चांदी भेजने का परिमाण बढ़गया और सिक्कों के लिए उसकी मांग घट गई। इस पर संघ को बड़ी विकट स्थिति का सामना करना पड़ा था। उसे सोने के खर्चे से चांदी का बोझ उठाना पड़ा। लोग सोने के व्यवहार से परिचित हो गये थे। वे सोना छोड़कर चांदी का बोझ नहीं ढोना चाहते थे। इंग्लैंड तो कदापि अपनी पद्धति नहीं छोड़ना चाहता था। सन् १८७४ में संघ की फिर एक बैठक हुई जिसमें निश्चय हुआ कि पाँच फ्रैंक के टुकड़ों का मुफ्त में ढालना बंद कर दिया जाय और उनका प्रचलन परिमाण पूर्ण रूप से परिमित कर दिया जाय। यह सब होने पर भी द्विधातु पद्धति में फ्रांस सफली भूत न हुआ।



१२ वां प्रकरण।

द्विधातु पद्धतिः २ अन्तर्राष्ट्रीय प्रक्रिया।



न् १८७४ में चांदी के सिक्कों की लेटिन संघ की टकसालें बन्द हो जाने पर हमारे सन्मुख द्विधातु का प्रश्न उपस्थित होता है। यह दूसरा रूप पहले से बिल्कुल भिन्न है। यद्यपि इसका उद्देश्य भी वही था अर्थात् चांदी का मूल्य परिमाण सोने के समान ही हो; तथापि उसके प्रयोजन भिन्न थे और उसके लिये भिन्न २ उपाय काम में लाये गये थे। सोने के मूल्य के एक ही परिमाण होने के कारण उस धातु की मूल्य—अभिवृद्धि का भय हो रहा था और इसी से व्यापारिक राष्ट्र चांदी की अवस्था पर विचार करने को वाध्य हुए थे। जिस बात को फ्रांस और उसके लेटिन मित्र न कर सके उसे अब सभ्य संसार के सम्मिलित उद्योग ने संभव कर दिखाने का प्रयत्न किया।

जर्मनी ने जब चांदी के सिक्कों का बनाना बन्द किया तो उसके उत्तर के कतिपय पड़ौसी राष्ट्रों ने भी उसका अनुकरण किया। फ्रेंच—जर्मन युद्ध के उपरान्त जर्मनी ने एक दम नवीन क्षेत्र में प्रवेश किया और अपने सिक्कों को नये रूप में बनाने के

लिये अग्रसर हुआ और सन् १८७३ से ७६ तक उसने ७,०००,००० पौंड से अधिक चांदी बाजार में फैला दी। हालेंड और स्केंडीनेवियन सरकारों ने भी उसका अनुकरण किया। सन् १८७३ में अमेरिका ने तो अपने यहां चांदी के सिक्के बनाना बन्द कर दिया। इस प्रकार चांदी की मांग कम होने, खानों से चांदी अधिक परिमाण में निकलने तथा सिक्कों से चांदी हट जाने के कारण उसके सोने के मूल्य का भाव गिर गया। चांदी की ईंट (बुलियन) का भाव दो शताब्दी से अधिक तक ५ शि० या ५ शि० २ पैंस प्रति औंस रहा। सन् १८७३ में ५९$\frac{1}{4}$ पेंस, सन् १८७५ में ५६$\frac{7}{8}$ पेंस और सन् १८७६ में छः मास में उसका भाव ५६$\frac{1}{8}$ पेंस से ४८$\frac{3}{4}$ पेंस हो गया; यहां तक कि वह १ शि० ६ पेंस ही रह गया। चांदी के स्वर्ण-मूल्य का परिमाण घट जाने से साधारण मूल्यों में भी कमी हो गयी।

इन दो कार्यों से, चांदी के मूल्य में कमी होने तथा वस्तुओं के मूल्य में भी उतार होने पर द्वि-धातु-सिद्धान्त वादियों का आक्रमण सोने के परिमाण पर हुआ। संक्षेप में उनका कथन इस प्रकार है:—"सिक्के बनाने के लिये सोने की इतनी ज़्यादा मांग हुई है कि जैसी पहले कभी न हुई थी कारण यही था कि उसे बाजार में फैली हुई चांदी का स्थान ग्रहण करना था; सोने का मिलना क्रम २ से कम हो रहा है और संसार में इतना सोना एकत्र नहीं है कि आवश्यकता पूरी की जा सके। यह हुआ कि स्वीकृत सिद्धान्त के अनुसार, कि द्रव्य का मूल्य उसके प्रचलत

और उसके व्यवहार पर निर्भर है, सोने का भाव बढ़ गया। इससे यह स्पष्ट ही है कि चांदी के एक वस्तु की तरह हो जाने तथा मूल्य का प्रमाण रूप न रहने के कारण स्वभावतः ही उसने मूल्य के गिराव में भाग लिया। इस पर जो उपाय इस सिद्धान्त के लोगों ने बताये उनका मुख्य भाव यही था कि चांदी के सिक्के फिर बनाये जायें और उनका प्रचलन निश्चित अंश पर क़ानूनी रूप में हो। इससे प्रचलन का परिमाण भी बढ़ेगा और जो भाव गिर गया है वह भी चढ़ जायेगा। जिन सिद्धान्तों पर इन लोगों ने अपना कार्य प्रारम्भ किया था, इनके विरोधी केवल सोने का प्रमाण मानने वालों ने इन बातों को मानने से इन्कार किया। सन् १८७३ व १८७४ मूल्य में बहुत ही वृद्धि हुई, और जो सिद्धान्त इस समय निर्धारित किये गये थे वे गलत सिद्ध हुये।

समय परिवर्तन शील है। एक बार जो भूल होजाती है उसका फल भोगना ही पड़ता है। उसी प्रकार यह भारी भूल देश को सहनी पड़ी, जो अनिवार्य थी। हां, उपायों द्वारा उसका परिहार अवश्य किया गया। पुनर्वार चांदी के सिक्के बना कर उसे मूल्य का प्रमाण मानने से एक धातु के समर्थकों ने इन्कार किया। उनकी दृष्टि में पुराने मूल्य पर नवीन सिक्कों को पहुँचाना ठीक न था। उनकी मांग भले ही बढ़ जाये; परन्तु उसकी भरती अधिक बढ़ गई थी कि पहले के समान उसका पुनः हो जाना असंभव था। थोड़ी सी क़ीमत बढ़ने पर ही उसका उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता उपस्थित हो जायेगी और इसका फलस्वरूप फिर उन

टकसालों को खोलना पड़ेगा जो अब तक बेकार समझी जाती थीं। इसके अतिरिक्त चांदी को उनने भारी समझ कर तथा प्रचलन और भुगतान में इसका व्यवहार भद्दा व असुविधा जनक समझ कर इसका प्रचलन (सिक्कों के रूप में) अनावश्यक प्रमाणित किया। अतएव चांदी के सिक्के बनवाने के लिये फिर कारखाना खोलना इन लोगों ने आवश्यक सिद्ध किया। जब अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति द्वारा यह निश्चय हुआ कि चांदी प्रचलन में फिर सिक्के का रूप धारण करे तो, बहुमत ने उसे प्रत्यक्ष रूप स अस्वीकार किया साथ ही उसे मन्तव्य को एक दम अनुपयोगी सिद्ध किया।

अब इंग्लैंड क्या चाहता था, इस पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है। इंग्लैंड इन सिद्धान्तों से विलग था, इंग्लैंड में चांदी न तो निकलती थी और न वह किसी अंश में उसे लेने को तयार था। फिर भी उसे स्वतः नहीं तो, उसके पूर्वीय साम्राज्य भारत को इस उलटफेर से बहुत भारी धक्का पहुँचा। बहुधा लोगों के दिल में यह गलत ख़्याल रहता है कि मूल्य की अभिवृद्धि से लाभ होता है; तथापि हमारे लिये यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि हमें मूल्य के परिमाण को स्थायी करने का प्रयत्न करना चाहिये। द्रव्य के मूल्य में किसी प्रकार का परिवर्तन होना हानि कारक है। यद्यपि यह निश्चित नहीं है तथापि यह संभव है कि इंग्लेंड जैसे देश को, जहां विदेशी व्यापार की अधिकता है, मूल्य-वृद्धि के साथ द्रव्य का

मूल्य बढ़ जाना विशेष हानि कर नहीं है, जैसा कि इसके प्रतिकूल होने पर हो सकता है। उदाहरण के लिये सन् १८६० और १८७३ के बीच का समय अंग्रेजी इतिहास का सब से उन्नत समय था और फलतः मूल्य बहुत बढ़ गया था। यहां हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि बढ़ते हुये मूल्य के होने वाली हानि को सहन करने के लिये इंग्लैंड तैयार था। यह बात निर्बन्ध व्यापार प्रस्थापित होने के दूसरे ही वर्ष की है। और यद्यपि कुछ अंशों में यह सम्बन्ध नही माना जाता है तथापि यह मानना पड़ेगा कि विलायत का विदेश व्यापार इतना बढ़गया कि बढ़ते हुये भाव को रोकने की आशा न रही। मूल्य की ही वृद्धि नही हुई थी किन्तु मजदूरी भी बढ़ गयी थी। साथ ही खाद्य पदार्थों का भाव भी गिर गया था। कीमत की बढ़ती से मजदूरी तथा वेतन भोगियों को बड़ी कठिनता पड़ती है; क्योंकि मूल्य मे तो वृद्धि हो जाती है पर वेतन में वृद्धि नही होती। कारण यही है कि वेतन की वृद्धि बहुत कम और बहुत धीरे होती है और मूल्य जल्द २ बढ़ जाता है। सन् १८७३ तक ये कठिनाइयां लोगों को नहीं झेलनी पड़ीं; परन्तु हां, यदि इसके उपरांत भी द्विधातु-सिद्धान्त-वादी अपना कार्यक्रम आगे बढ़ाते तो वास्तव में घोर कठिनाइयां उपस्थित होतीं।

सन् १८७३ के उपरान्त बाजार भाव गिर जाने पर व्यापारिक समुदाय को जो हानि पहुँची वह वास्तविक हानि थी, क्योंकि कारीगरों का सारा लाभ हानि के रूप में परिवर्तित हो

जाता। आजकल के कारीगर आई हुई मांग पर माल तैयार करते हैं और लाभ इतना कम होता है कि थोड़ा सा भाव भी गिरने पर वह लाभ हानि के रूप में परिवर्तित हो जाता है। उसी प्रकार यदि सदैव मूल्य में कमी होती रहे, भाव गिरता रहे तो व्यापार नाश को प्राप्त हो जायेगा उद्योग धन्दे बन्द हो जायेंगे और इसका परिणाम समस्त जाति पर हुए बिना न रहेगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह हानि मांग का रुख घटने से है और एक दम बाजार भाव चढ़ा देना इसका उपाय नहीं है।

द्विधातु सम्बन्धी आन्दोलन का इतिहास कतिपय सभाओं का कार्यक्रम ही है। ये सभाएं फ्रांस और अमेरिका के उदाहरण पर सन् १८७८ और ८१ में पैरिस तथा सन् १८९२ में ब्रूसेल्स में हुईं। इनका उद्देश्य यह था कि चांदी की मूल्य का प्रमाण मान कर उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति द्वारा प्रचलन में रखा जाये। इंग्लैंड में भी एक विशेष समिति द्वारा इस विषय का विचार हुआ। यह समिति सन् १८७६ में चांदी के मूल्य में कमी होने के कारणों की जांच के लिये हुई थी। इसके अतिरिक्त सन् १८८६ में एक राजकीय कमीशन बैठा था। इन सभाओं में अनेक बातों पर विचार हुआ पर कार्य में लाने योग्य कोई बात नहीं हुई। अन्तर्राष्ट्रीय सभा को असफलता प्राप्त होना इंग्लैंड का कार्य था। लंदन संसार में सोने के बाजार का केन्द्र स्थल है। वहां के लोगों ने द्विधातु-प्रमाण मानने वालों की बात न सुनी। अंगरेजी प्रतिनिधियों ने इस विषय पर सम्मति

दी कि चांदी प्रचलन में रखी जाये; परन्तु सर्वत्र पुनर्वार चांदी के सिक्के जारी करने के पक्ष में वे अपनी सम्मति न दे सके। इस प्रकार बहुत वर्षों तक द्विधातु के प्रश्न समस्त संसार के लिये एक विकट प्रश्न रहा। परन्तु सन् १८९७ और १८९८ में यह हल चल शान्त हो गयी। राजनैतिक क्षेत्र में भी यह प्रश्न समाप्त हो चुका था। सन् १८७३ से मूल्य में जो बराबर कमी हो रही थी, वह सन् १८९६ और १८९७ से रुक गया और जैसा कि श्रीयुत सर बैक्स की सूची से विदित होता है वह निश्चित रूप से बढ़ गया। इस कार्य ने एक ओर के लोगों को शान्त कर दिया इधर अफ्रीका में सोने की खानें निकल आने पर दूसरी ओर भी शान्ति होगई।

द्विधातु-प्रमाण वादियों का यह कथन था कि वस्तुओ के मूल्य में गिराव होना सोने की कमी थी। परन्तु ट्रांसवाल की खानों से सोना निकलने पर यह प्रस्ताव रद्द होगया; क्योंकि इन खानों द्वारा सोना बहुतायत से निकलता था यहां तक कि सन् १९१५ में ३८,६२७,४६१ पौंड का सोना निकला। एक दृष्टि से द्विधातु-प्रमाण वादियों की ही विजय हुई। सोने की व्यवहार-वृद्धि उस धातु की कमी का कारण हुई। परन्तु सोने की वृद्धि के साथ मूल्य में वृद्धि होना द्विधातु-सिद्धान्त वादियों के कथन की ही परिपुष्टि है। इन लोगों का सिद्धान्त विरोधियों की अपेक्षा न्यायकूल था। इंग्लैंड के लिये यह प्रश्न सर्वथा न्याय की धरातल पर ही नहीं अपितु व्यापारिक भित्ति

पर भी था; अतएव, इंग्लैंड की ही विजय हुई। इंग्लैड का सिद्धान्त न्यायाय नहीं किन्तु व्यवहार सुलभ था और इसी से वह सम्पति मान भी हुआ उसने सोने को ही मूल्य का प्रमाण माना। इसके प्रतिकूल द्विधातु वादियों का सिद्धान्त न्याय युक्त होने पर भी व्यवहार कठिन था और इसी से थोड़े से प्रयोग से ही उसे और भी असफता हुई।



१३ वां प्रकरण

साख—नोट प्रकाशन के नियमोपनियम



बतक हमने केवल धातुके ही सिक्कों के विषय में विचार किया है और ऐसा करने में केवल सोने को ही हमने विनिमय-माध्यम मान लिया है। यह सर्वथा सत्य नहीं है। सोना सिक्के का एक अंग है अथवा मूल्य परिमाण का एक अंश मात्र है। स्वर्ण के इस आधार पर अनेक शर्तें और कायदे स्थित हैं अतएव मूल्य का परिमाण सोना और उसे देने की शर्तों का मिश्रण है। एक प्रकार से सोने को मूल्य का परिणाम बनाना भी अनुचित नहीं है; कारण कि इस परिणाम का कागजी हिस्सा नियमानुसार सोने के रूप में देना चाहिये। किन्तु हमें यह कदापि न भूल जाना चाहिये कि इन प्रतिज्ञाओं द्वारा मूल्य का परिणाम निश्चित किया जाता है। यदि हम प्रचलन में से कागजी द्रव्य का अस्तित्व मिटा दें तो मूल्य का अव शेष अर्थात् सिक्का बहुत बढ़ जायगा। एतदर्थ हम यह नहीं कह सकते कि विनिमय माध्यम केवल सोना ही है, यद्यपि उसका सम्पूर्ण आधार सोना ही है।

सन् १९१० में अमेरिका के नेशनल मोनेटरी कमीशन की ओर से श्री० आर. डब्ल्यू. व्हेले ने पेरिस बैंक की लब्धि (प्राप्ति) में नक़द और साख के दो प्रकारों की खोज कर कुछ अंक दिये है। वे इस प्रकार है:——

नगर के प्रधार कार्यालय

विवरण	यथाक्रम दिन मंगलवार २५ अगस्त सन् १६०८	शनिवार २२ अगस्त १६०८	स्टाक और एक्सचेंज का निर्धारण दिन वहस्पतवार २७ अगस्त १६०८
सिक्के (धातु)	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा
इंग्लैंड बैंक के	१.१०	०.७५	०.४७
नोट हुंडी	०.६६	०.४४	०.४४
(७ दिन) हुंडी	०.०२	०.०४	० ०१
(७दिनसेऊपरी	०.७३	०.८४	०.१६
चेक	६७.४५	६७.६३	६८.८६
कुल	१००.००	१००.००	१००.००

इसी प्रकार प्रान्तीय कार्यालयों के अंक भी देखिये:—

प्रान्तीय कार्यालय ।

विवरण	यथाक्रम दिन मंगलवार२५ अगस्त सन् १९०८	शनिवार २२ अगस्त१९०८	स्टाक एक्सचेंज का निर्धारण दिवस गुरुवार २७अगस्त१९०ई
सिक्के	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा
इंग्लैंड बैंक के	८.८७	७.२९	६.७१
नोट हुन्डी (७ दिन की	३.४७	३ २०	२.६१
मुद्दती) हुंडी	०.४०	०.१९	०.३६
(७दिनसेऊपरी	१.४६	०.४२	१.०४
चेक	८५.७०	८८.९०	८८.९८
कुल	१००.००	१००.००	१००.००

इस विवरण से हमें ज्ञात होता है कि नियत दिवसों पर बैंकों ने अपने ग्राहकों के नाम उनके खाते में जो धन दिया उसमें सिक्के के रूप में १ प्रति सैकड़ा से भी न्यून था और प्रान्तों में ८ प्रति सैकड़ा मुश्किल से था । हां, यदि सब सौदों

का विचार किया जाये तो सिक्कों के उद्योग का औसत कहीं इससे भी अधिक हो; क्योंकि प्रत्येक सौदा जो हुंडी और चेक द्वारा निर्धारित होता है, उसमें बैंक की मध्यस्थता की आवश्यकता है। इसके विरुद्ध दैनिक व्यवहारों में जो नक़द धन व्यय होता है उसमें बैंक की मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं होगी।

सिक्कों को निकाल कर जो अंश बचता है उसे "साख का उपकरण द्रव्य" कह सकते हैं। साख के भी अनेक अर्थ है और भिन्न २ आशय से उसका प्रयोग होता है। परन्तु यहां पर इसका 'भावी द्रव्य की प्राप्ति का वर्तमान अधिकार' अर्थ का द्योतक है। साख यह अधिकार है और यह भार इसका आवश्यकीय है। विविध प्रकार के कागजी द्रव्य इस बात के प्रमाण हैं। ये इस अधिकार के परिवर्तन करने के जर्ये हैं। शंकरलाल ने बेणीप्रसाद को तीन महिने की मुद्दत का एक प्रामेसरी नोट दिया। बेणीप्रसाद तीन महिने समाप्त होने के पूर्वक तक १००) रुपये प्राप्त करने का अधिकार रखता है और शंकरलाल भी वही भार अपने ऊपर अदायगी का रखता है यहां यह याद रखना चाहिये कि बेणीप्रसाद का अधिकार तुरन्त का है। यदि वह उससे छूटना चाहता है तो वह कागजी नोट को बेंच सकता है उसे वह बैंकर के पास ले जाता है और बैंकर उससे ब्याज और थोड़ा कमीशन लेकर बेंच देता है।

साख का प्रत्येक उद्गम द्रव्य के अंश को बढ़ाता है जो प्रचलन में रखा जा सकता है और इसी लिये उसका मूल्य पर

प्रभाव पड़ता है। साख का उद्गम माल की मांग वाली शक्ति को बढ़ाता है अर्थात् वह माल की मांग और जमा करने की शक्ति को बढ़ता है और दूसरी वस्तुयें समान होने से, मूल्य बढ़ जाता है।

विविध साखों का द्रव्य, जो प्रचलन में हैं, सोने में अदा नहीं किया जाता, यद्यपि कानून के अनुसार इस प्रकार जमा किया जाना चाहिये। सोने का जो अंश इंग्लैंड में प्रचलन में है, उसके द्वारा वादे के हाजिर कागज का बहुत थोड़ा अंश बटाया जा सकता है। साख का अधिकांश तो नवीन उद्गम और परिवर्तन में ही अदा हो जाता है। वास्तव में हमारे समस्त साम्पतिक कार्य और साख या वादे केवल विश्वास पर निर्भर हैं और जब २ इस विश्वास में कमी होती है, साम्पतिक झगड़े हमारे दृष्टि गोचर होते हैं। समस्त ऋण वायदे नामे के अतिरिक्त क़ानून व सोने या इंग्लैंड बैंक के नोट द्वारा अदा किया जा सकता है और इस के लिये उसी समय सोना मांगा जा सकता है। परन्तु वादे में यह साख के द्रव्य अथवा कागजी द्रव्य से अदा कर सकते हैं जो सर्वत्र स्वीकार किया जा सकता है। हम सोना पाने के अधिकार से जमा करते हैं और उसका बहुत थोड़ा अंश सोने में अदा होता है।

साख के द्रव्य का अंश जो सोने के मूल्य पर तैयार होता है निश्चित अंश नहीं है साथ ही यह अनियमित भी नहीं है। व्यापारिक संसार को सब से बड़ा भय साख के द्रव्य की बहुत बड़ी

संख्या में बनाने में है, जिसका परिणाम अत्यन्त हानि कारक होता है। व्यापारिक दशा सरकार और प्रजा पारस्परिक विश्वास तथा सब से अधिक व्यापारिक युक्तियों की उपस्थिति व अनुपस्थिति के अनुसार तादाद में फर्क पड़ता रहता है।

बैंक के नोट का रुपया उसके लाने वाले को दिया जाता है और उनका परिवर्तन एक के पास से दूसरे के पास बिना किसी शर्त के स्वतन्त्रता पूर्वक हो सकता है। विविध प्रकार के लेख पत्र या दस्तावेज़ें जो सोना चाहने अर्थात् सोना ले सकने के प्रमाण हैं अथवा इस प्रकार के अधिकार परिवर्तिन करने के प्रमाण हैं, और जो साधारण व साख के यन्त्र या नियन्त्रक हैं दो भागों में विभक्त हैं; एक तो बैंक नोट और गवर्नमेंट नोट और दूसरे चेक, बिल, प्रामिसरी नोट इत्यादि। इन दोनों में बहुत अन्तर है। दूसरे प्रकार की श्रेणी में कागजी द्रव्य के भिन्न २ रूप हैं, जो निश्चित समय के बाद तक कदाचित ही बने रहते हैं। पर जैसा कि ऊपर लिख आये हैं बैंक के नोटों का रुपया उसके लाने वाले को दिया जाता है और उनका परिवर्तन परस्पर बिना किसी व्याघात अथवा बन्धन के हो सकता है। यही नहीं वे बहुधा लीगल टेंडर हैं। जो बैंक नोट निकालता है उसके पास वे वर्षों पहले अदायगी के लिये उपस्थित किये जाते हैं।

इस अन्तर का परिणाम यह है कि बैंक के नोट निकालने के लिये कठोर और सुनिश्चित नियम की आवश्यकता पड़ती है।

और दूसरी श्रेणी के कायदे के कागज जो व्यापारिक रीति नीति द्वारा बने हों। और इस प्रकार कानूनी संरक्षण भिन्न २ श्रेणी के लिये, जैसा कि अनुभव प्रकट करता है, होना आवश्यकीय है। उनके निकालने के लिये दूसरी श्रेणी पर नियम लगाना सरल न था; क्योंकि व्यापारिक समाज व्यापारिक साख पर किसी प्रकार के नियमोपनियम बरदाश्त नहीं कर सकता। इसके नियमादि तो व्यापारिक ढंग और रिवाज पर ही निर्भर हैं। ये व्यापार के बड़े भारी अनुभव के द्वारा रचे जाते हैं। बैंक नोट के विषय में एक दम दूसरी बात है। इनका प्रचलन तो सिक्कों के समान होता है। जिस प्रकार सिक्के स्वीकार किये जाते हैं उसी प्रकार अधिकांश में ये भी लिये जाते हैं। एक बार रिवाज द्वारा स्वीकृत हो जाना चाहिये फिर तो लोग यह भी नहीं देखते कि जिस बैंक ने उन्हें निकाला है, क्या वह उसकी सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओं को पूरी कर सकता है या नहीं। वे बिना किसी बाधा के स्वतन्त्र रूपेण ले लिये जाते है। और ये उस समय तक बराबर लिये जायेंगे जब तक बैंक बिना किसी सूचना के उनका रुपया देना बंद कर दे। अठारहवीं सदी के बैंक के इतिहास मे बैंक नोट के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। वे अनाधिकारी व्यक्ति द्वारा निकाले गये और स्वतंत्रता पूर्वक उनका प्रचलन होता रहा। इंग्लैंड बैंक के चार्टर द्वारा बड़े २ बैंकों में से ही नहीं प्रत्युत् छोटे२ बैंकों ने भी नोट प्रचालित कर दिये। परिणाम यह हुआ कि अन्त में साख पर बहुत भारी धक्का

पहुँचा और अनेक छोटे बैंक हताश हो गये और उन्हें अपने पट बंद करने पड़े।

इंग्लैंड में अर्थशास्त्रियों की एक निःशुल्क पाठशाला है जिसका नाम है—फ्री बैंकिंग स्कूल। इन अर्थशास्त्रियों का कथन है कि नोट निकालने के काम में किसी प्रकार का बन्धन न डाला जाये। हां, कानूनी शर्त में जब कि उनकी अदायगी सिक्कों द्वारा हो तो यह बात न रखी जाये। किन्तु इनमतों का सम्प्रति निरादर हो रहा है और हम देखते हैं कि सर्वत्र लोगों की यह इच्छा है कि समस्त सभ्य देशों में नोटों के निकालने में कुछ बन्धन होना जरूरी है।

इसके पूर्व कि हम नोट निकालने के नियमों पर विचार कर परिवर्तनीय अपरिवर्तनीय नोटों के विषय में कुछ बातें बतला देना आवश्यक है। संक्षेप में इतनाही जान लेना पर्याप्त हैकि अपरिवर्तनीय नोट खराब हैं और राष्ट्र के लिये हानिकर हैं। नोट प्रकाशन में कमजोरी तब होती है जब वे नियत संख्या से अधिक निकाले जाते हैं। जिस से करन्सी का मूल्य घट जाता है और मूल्य—परिमाण की स्थिरता को भी धक्का पहुंचता है। नियत संख्या से अधिक वाले नोट परिवर्तित रूप में अच्छे हैं अपरिवर्तनीय कागज अर्थात् कागजी रुपया अदायगी कानूनन सोने या सिक्कों द्वारा नहीं की जा सकती, अपना मूल्य बनाये रखे और जबतक उस का परिमाण विदित है तब तक वह द्रव्य के कार्यों को पूरा करे। परन्तु

अनुभव से यह बात प्रगट होती है कि वर्तमान समय में इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग करने अर्थात् अपरिवर्तनीय कागज निकालने की शक्ति किसी समय के लिये भी काम में लायी जा सकती और इस शक्ति की निंदा इतनी बढ़गई है कि उसका रोकना कठिन होरहा है।

अतएव प्रधान गुण नोट प्रकाशन का यह है कि उसका भुगतान सिक्कों में होना चाहिये। अब यह प्रश्न उठता है कि इस परिवर्तनशीलता पर किस प्रकार विश्वास दिलाय जाये। यहां पर हमें बैंक की ऋण भर देने की योग्यता का ही ध्यान नहीं रखना पड़ेगा प्रत्युत् नोट के तुरंत भुगतान का भी ध्यान रखना पड़ेगा। नोट एक प्रकार का वायदा है जो आवश्यकता पड़ने पर सिक्कों के रूप में परिवर्तिन किया जा सकता है। नोट प्रकाशन के आर्थिक बन्धन पर बहुत कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। कहा जाता है कि नोट चलाने के लिए उतने मूल्य की जमीन अथवा अन्य प्रकार की सम्पति होना जरूरी है। पर जब सिक्कों से नोटों के परिवर्तन की बात आ जाती है तो सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं।

परिवर्तनीयता का विश्वास दिलाने का सब से अच्छा उपाय तो यह है कि जितने के नोट निकाले जायँ उतने मूल्य का सोना बैंक में सुरक्षित रहे। इसे 'साधारण संरक्षित प्रणाली' कहते हैं। इसमें अनेक कठिनाइयां हैं जो दूर की जा सकती हे; क्योंकि प्रारंभ

में जब साख प्रणाली चली ही थी तब एम्सटर्डम में बैंक ने यही प्रथा प्रचलित की थी। परन्तु आजकल कागजी द्रव्यों या प्रचलन सिक्कों के स्थान की पूर्ति करना ही नहीं है प्रत्युत् अधिक भार आदि की असुविधा से बचाने के अतिरिक्त नोट विनिमय कार्यमें सुलभता पूर्वक विदेशभी भेजे जा सकते हैं। नोटका सरंक्षित सोना बिना किसी अर्थ के पड़ा रहेगा। हम जानते हैं कि कुछ सोना इस कार्य के लिए अवश्य सुरक्षित रखना चाहिये किन्तु सम्पूर्ण सोना बिना अर्थ के रखना और यदि कुछ सोना कार्य में लगाने के लिए उतने ही मूल्य के प्रचालित नोटों को कम करना, ये बातें आज कल की प्रणाली के लिये व्यर्थ हैं। स्वर्ण-सुरक्षण-प्रथा में सुधार द्वारा जो नई पद्धति प्रचलित की गई है उसके द्वारा इस प्रकार के बैंक नियमित संख्या में नोट निकाल सकते हैं और उन्हें संरक्षण में सोना नहीं रखना पड़ता। यह अंग्रेजी पद्धति है जो सन् १८४४ के बैंक चार्टर एक्ट की धारा के अनुसार जारी है। जर्मनी ने भी कतिपय आवश्यक परिवर्तन के पश्चात् हमारा अनुकरण किया है। अंग्रेजी कानून एक ऐसी कड़ी हद बांध देता है कि जिसके कारण बैंक नोट नहीं निकाल सकते। यदि वे निकालें भी तो उन्हें परिवर्तन में उतने ही मूल्य का सोना रखना पड़ेगा। परन्तु जर्मनी ने कुछ शर्तों द्वारा कई सुविधायें रखी हैं जिसके द्वारा वे इस परिस्थिति में परिवर्तन कर निश्चित संख्या में वृद्धि कर सकते हैं। इसके पूर्व युद्ध ने इन बन्धनों को ढीला कर दिया जर्मनी का इम्पीरियल बैंक हुंडियों के

अतिरिक्त ५५०,०००,००० मार्क तक के नोट चला सकता था पर इससे अधिक के लिए उसे कोष में उतना ही सोना रखना पड़ता था। इस प्रकार नोटों में बढ़ती करने के लिए बैंक सरकार को ५ प्रति सैकड़ा देकर नोट चला सकते थे मगर साथ ही शर्त यह थी कि उसके समीप उतने नोटों के बराबर मूल्य का $\frac{1}{3}$ भाग सोना अवश्य होना चाहिये था।

अमेरिका की पद्धति बिल्कुल भिन्न है। सन् १९१३ के संयुक्त कोष का एक्ट पास होने तक युक्त प्रदेश अमेरिका के प्रचलन में सोने चांदी के खजाने के प्रमाणपत्र के अतिरिक्त, वहां के प्रचलित सिक्कों के नोट थे जो "ग्रीन बैक" कहलाते थे और जो अमेरिकन सिविलवार के पहले चलाये गये थे और थोड़े परिमाण मे ट्रेजरी नोट थे जो सन् १८९० के एक्ट के अनुसार प्रचलित थे। इसके अतिरिक्त नेशनल बैंक के भी नोट निकले।

'ग्रीन बेक्स' नोटों का द्रव्य परिमाण बहुत वर्षों से निश्चित कर दिया गया था अतएव राष्ट्र का ध्यान नेशनल बैंक की ओर गया जहां नवीन पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ था। यह पद्धति राष्ट्रीय ऋण पर निर्धारित भी थी। प्रत्येक राष्ट्रीय बैंक को अपने यहां नोटों के निश्चित परिमाण के अनुकूल युक्त प्रदेश की सरकार के ख़जाने के बौंडों (बन्धकों) को ख़रीद कर जमा रखना पड़ता था। इसका परिणाम

यह हुआ कि नोट प्रचलन अधिकांश में सुव्यवस्थित रखा जा सका किन्तु देश के व्यापार की सदैव परिवर्तित आवश्यकता तो वह पूर्ण न कर सका। यह पद्धति बड़ी कठोर थी और वह इस लिए और भी बढ़गई थी कि बैंकिंग के कानून के अनुसार प्रत्येक राष्ट्रीय बैंक को यदि वह किसी अच्छे नगर में है तो २५ प्रति सैकड़ा और यदि अन्यत्र है तो १५ प्रति सैकड़ा अपनी कुल रक़म का नक़द सिक्कों के रूप में रखना अनिवार्य था। अतएव यदि किसी समय द्रव्य की कोई विशेष आवश्यकता आ पड़ती तो न केवल और नोटों का प्रचलन असंभव था प्रत्युत् वह मांग मूल रकमसे पूरी की जाती थी। इसीसे बैंकमें ऋण और साख के साधारण बंधनों की आवश्यकता पड़ी। इंग्लैंड में इस कठोर पद्धति का अनुभव नहीं किया गया क्योंकि वहां नोटों की मांग सर्वथा एक सी रहती है। परन्तु अमेरिका की हर एक फसल पर नये द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है जो चेकों द्वारा पूरी नहीं की सकती। अतएव वहां नोटों की वृद्धिशील प्रणाली की बहुत आवश्यकता पड़ती है। इसके विरुद्ध जब कभी किसी फसल पर मांग बहुत थोड़ी होती है तो तब वृहत् परिणाम में द्रव्य का संग्रह जो व्यर्थ निरुपयोगी रखा है और जिसे बैंक ज़बरन प्रचलन में लगा रहे हैं, एक ऐसी कठिनता है जो देश के आर्थिक कल्याण में बड़ी बाधक है।

सन् १९१३ के संयुक्त कोष के कानून के अनुसार अमेरिका के मुख्य नगरों में प्रायः १२ संयुक्त-कोष

—बैंक स्थापित किए गए, ये बैंक संयुक्त कोष बोर्ड की व्यवस्था में थे। इस बोर्ड को अधिकार था कि स्वेच्छापूर्वक इन बैंकों को नोट दे जो अमेरिकन सरकार द्वारा वाधित थे। साथ ही इन नोटों के लिए उतने ही मूल्य के प्रामिसरी नोट और बिल, जो डिस्काउंट पर लिए जा सकें, रखना आवश्यक था। साथ ही इस जमा पूंजी में ४० प्रति शत सोना होना भी आवश्यक था। हां, किसी ग्रेज्युएटेड टैक्स के दे देने पर यह सोने का परिमाण कम भी किया जा सकता था। यह नियम जर्मन पद्धति से ग्रहण किया गया है। राष्ट्रीय बैंकों के अधिकार में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया गया। उनके प्रचारित बॉड संयुक्त कोष बैंक खरीदकर उनके पूरे मूल्य इतने नोट प्रचलन में निकाल सकते थे। इस कार्य से विदित होता है कि राष्ट्रीय बैंक का रहा सहा अधिकार संयुक्त कोष बैंकों को दे देने की इच्छा है। फ्रांस देशीय पद्धति 'अधिकतम प्रचलन' पद्धति द्वारा नियमित है। यह अधिकतम द्रव्य—परिमाण युद्ध के पूर्व ६,४००,०००,००० फ्रैंक था। फ्रांस की स्थिति एक अपवाद है। वहां धातु के सिक्कों का का ही प्रचलन बहुत बड़ी संख्या में है इसके अतिरिक्त वहां के बैंकों में भी बहुत संरक्षित द्रव्य है।



१४ वां प्रकरण

नगद भुगतान के लिए बैंक आफ़ इंग्लैंड के बंधन





ग्लैंड ने केवल एक बार अपरिवर्तित कागजी सिक्कों के लाभा लाभ का मजा चक्खा है वह समय उल्लेखनीय हैं। केवल इसी लिए नहीं कि इंग्लैंड को उससे अनुभव प्राप्त हुआ किन्तु इसलिये कि इस श्रेणी के जिज्ञासु पाठक बहुत कुछ बातें उससे सीख कर अपने २ देश की करन्सी के सुधार के विषय में भी विचार करें।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ का वर्ष इंग्लैंड के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय है। इंग्लैंड क्रांतिकारी फ्राँस के विरुद्ध यूरोपियन संघ का मुखिया था और उसे इसका मुकाबिला करने के लिए अधिक धन संग्रह की आवश्यकता थी। मिस्टर पिट का लगातार बिदेश में हुंडियाँ भेजना अपनी शक्ति को कम करना और देश की आर्थिक स्थिति को धक्का पहुंचाना था। सोने की मांग प्राय दो प्रकार से होती है। यह मांग प्रथम घर की होती है जिसके द्वारा साख की अस्थायी न कामयाबी से जो मांग हो रही हैं उसकी पूर्ति हो। इस विषय में बैंक आफ़ इंग्लैंड पर बड़े २ बन्धन लगाये गये। देश ने जब अन्य कागजी द्रव्य को स्वीकार

नहीं किया तब भी लोगोंने इंग्लैंड बैंक के नोटों को हृदय से स्वीकार किया और आवश्यकता पड़ने पर बैंक की सहायता पर विश्वास भी किया। बैंक ने भी अपने कर्त्तव्य को सम्हाला और अपने अनुभव द्वारा सीखा कि लोगों का भय अबन्धन और उदारता प्रकट करने से दूर किया जा सकता है। दूसरी मांग विदेश की मांग कही जा सकती है। यह मांग ऐसे समय में आपत्ति दायक है। इस विषय में बैंक की प्रचलित नीति यह है कि अपने नोटों का निकालना और कर्ज देना बन्द कर दे। इससे साख कायम रहती है। ब्याज का भाव चढ़ जाने से विदेश का सोना देश में चला आता है और इस तरह प्रवाह रुक जाता है।

सन् १९१७ में देश और विदेश दोनो स्थानो से सोने की मांग हुई। इस पर श्रीयुत् पिट्स ने इंग्लैडबैंक के चार्टर का नियम परिवर्तित कर दिया। आपने बैंक को अपनी पूँजी से बाहर सरकार को कर्ज देना मना कर दिया जो सरकार सदैव चेक या हुन्डी बैंक पर करा करती थी और बैंक को ज़ब्रन उन्हे स्वीकार करना पड़ता था। इसी समय इग्लैंड के उत्तरीय प्रदेश न्यू कासल मे फ़रासीसियों के आ जाने के समाचार ने जो लंदन मे एक दम फैल गया था विकट स्थिति उपस्थित कर दी। बैंकों के डायेरक्टरों की बुद्धिमता इस पर समाप्त हो चुकी थी। एक ओर तो बिना किसी बन्धन के उधार धन देने की नीति को जारी कर इस स्थिति को परिमार्जित करने का उपाय सोच रहे थे

तो दूसरी ओर पिट साहब के उधार देने वालों ने अपने ऐसे हाथ सिकोड़े और सोने को इतने न्यून अंश पर पहुंचा दिया कि ऊपर की नीति को कार्य में परिणित करना कठिन होगया। इन कठिनाइयों को परिमार्जित करने के लिए २५ फरवरी सन् १९०७ को कौंसिलने एक सूचना निकाली। जिस के अनुसार कुछ शर्तों को छोड़ कर बैंक को नगद धन देने से मना किया गया। तदुपरांत् हानिपूर्ति का कानून भी शीघ्र ही पास हुआ। जो उसी वर्ष के जून मास तक जारी रहा था। इस कानून की दशा पर एक दम कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि जिसने इंग्लैंड बैंक के नोटों को कानूनी सिक्के के बाहर उठाकर रख दिया और उनके न लेने से इन्कार करने पर उसमें कोई दंड आदि भी नहीं रक्खा। इस समय इंग्लैंड में असंतोष की हवा खूब फैली। बैंक सोना संरक्षित रखने से मुक्त कर दिया गया था और वह स्वतंत्रता पूर्वक उधार दे सकता था। ऐसे अवसर पर साख की रही सही पूर्ति समाप्त हो गई। पार्लियामेन्ट के हाउस आफकामंस की एक कमेटी ने बैंक का निरीक्षण किया और उसकी स्थिति सर्वांश में मजबूत पाई। उसे धीरे २ भुगतान के लिए गिन्नी के स्थान पर एक और दो पौंड के नोट निकालने का अधिकार प्रदान किया गया।

कुछ समय तक करन्सी की हालत बिलकुल ठीक प्रतीत हुई और रोक आदि की कोई कठिनाइयां नहीं दिखाई दीं। सन् १८०९ के करीब किसी प्रकार दो बातें विशेष ध्यान आकर्षित करने लगीं।

पहली बात सोने का बाजार भाव कारखाने और टकसाल में बहुत ज्यादा बढ़ जाने की और दूसरी विदेशी प्रचलन में लगातार घटी होने की थी। सोने का बाजार भाव सन् १८०१ में ४ पौंड ५ शिलिंग प्रति औंस होगया था और टकसाल का भाव ३ पौंड १० शिलिंग १०½ पेंस था। इससे यह विदित होता है कि लोग एक औंस सोने के लिये ४ पौंड ५ शिलिंग देने को तैयार थे, जब कि वह सोना टकसाल में सिक्के ढलवाने लिए ले जाया जाता तो ३ पौंड १० शिलिंग १०½ पेंस का रह जाता। हमबर्ग का एक्सचैंज जो इंगलैंड के एक्सचैंजों का प्रधान केन्द्र है उस का भाव असली मूल्य से १४ पौंड प्रति सैकड़ा गिर गया था। यदि लंदन के एक मनुष्य को कर्जा हमबर्ग में किसी व्यक्ति को देना है तो उसे अपने कर्ज के द्रव्य में १४ पेंस प्रति सैकड़ा लंदन की अपेक्षा अधिक देना पड़ेगा। लंदन से हमबर्ग तक सोने का जहाज द्वारा खर्च ७ पेंस पड़ता था। फिर ७ पेंस अधिक किस बात में जोड़े गये? इस विषय का उत्तर लार्ड किंग का कानून इस प्रकार देता है कि, "यदि धातु और कागज के सिक्के बराबर प्रचलन में हों और बाजार भाव टकसाल से ज्यादा बढ़ जाय और विदेशी एक्सचेंज में मार्ग व्यय से अधिक उसका भाव गिर जाय तो यह अन्तर टकसाल और बाजार भाव के कागजी प्रचलनकी घटी प्रकट करता है।" यह बात प्रत्यक्ष रूपेण गलत दिखाई पड़ती है कि लोग ४ पौंड का सोना खरीदें जो टकसाल में केवल ३

पौंड १० शिलिंग १०½ पेंस सिक्के बनाने पर रह जाता है। बात यह है कि, सोने की कीमत कागजी कीमत थी। एक ऋण में लंदन की अपेक्षा हमबर्ग में अधिक देना पड़ता था क्योंकि कागज बाहर नहीं जायगा और लंदन में वही ऋण इंग्लैंड बैंक के नोटों में अदा किया जायगा। यह सिद्धान्त उस समय बिलकुल अस्वीकृत ठहराया गया। यह बताया गया कि बैंक के नोट कानूनी सिक्के नहीं थे और इस लिए वे अस्थाई अपरिवर्तित थे। कोई उन्हें लेने के लिये वाध्य नहीं था। सन् १७९७ के कानून के अनुसार बैंक के नोट देना सोना देने के समान समझा जाय यदि लेने और देने वाले, दोनों इस प्रकार सहमत हों। नोट का प्रचलन बिना किसी बंधनके होता रहा। उनके चलन में किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला गया। चारों ओर से लोगों ने इंग्लैंड बैंक पर अपना विश्वास प्रकट किया। तब किस प्रकार नोट के मूल्य में घटी हो सकती थी? इसी घटी का कारण जो न सोचा गया था वह यह था कि अन्य वस्तुएं समान होने पर द्रव्य का मूल्य प्रचलन की संख्या पर निर्भर है। नोट पर बट्टा लगता था क्योंकि वे नियत संख्या से ऊपर निकाले जा रहे थे। अपरिवर्तित कागजी द्रव्य का बैंक या सरकार द्वारा निकालना जिनकी स्थिति सर्व प्रकार अच्छी न हो, उस समय जनसाधारण के हृदय में मजबूती का विश्वास घट जाता है और तब मूल्य अर्थात् करन्सी के मोल होने की शक्ति अवश्य घटेगी। नकद भुगतान को रोकने के लिये जनता सिक्के इकट्ठा कर कर

रखने लगी । इंग्लैंड बैंक में जमा किया सोना सर्वांश में नहीं निकाला जा सकता था उसका अधिक स्थान नोटों ही ने ले लिया और जब अधिक निकाले गये तब करन्सी और भी बढ़ गई और कुछ अंश उसका बाहर भी चला गया । यह अंश सोने और चांदी के सिक्कों का था क्योंकि विदेशी लोग अपरिवर्तित कागज कब लेने लगे जब कि सोना एक्सचैंज के साधारण प्रवाहों द्वारा गायब होगया। तब और अधिक नोट निकालना करंसी के घटने का परिणाम होता है जो कि इस अवसर पर सब कागज रूप में थी और कीमत जो लगाई गई थी वह कागज की कीमत थी । सन् १८०३ और १८०९ तक घटी एक दम गायब हो गई और बाजार भाव कभी ४ पौंड से ऊपर नहीं चढ़ा । किन्तु सन् १८०९ और १८१० में ऐसा खतरा हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ।

इस खतरे को दूर करनेके लिए सन् १८१० में हाउस आफ कामंस ने एक कमेटी नियत की कि वह सोने की मूल्य वृद्धि पर विचार करे । कमेटी ने अपना विवरण बहुत अनुसन्धान के पश्चात् प्रकाशित किया जो अत्यन्त महत्व पूर्ण है । जो विवरण अपरिवर्तित करन्सी के शासन सम्बन्धी बातों को भली प्रकार से प्रकट करता है ।

विवरण प्रारम्भ में अपने सन्मुख अपरिवर्तित प्रश्नों पर ५ बातें रखता है :—

१—टकसाल के सोने का मूल्य ३ पौंड १७ शिलिंग १०½ पेंस प्रति औंस है ।

२—सन् १८१० के प्रारम्भ में सोने का बाजार भाव ४ पौंड १० शिलिंग और ४ पौंड १२ शिलिंग प्रति औंस के बीच का था।

३—हमबर्ग और अमस्टरडम के एक्सचेंज भवन में प्रचलन के असली मूल्य से १६ और २० प्रति सैकड़ा घटी हो गई थी।

४—बैंक आफ इंगलैंड और प्रादेशिक बैंकों के नोटों की संख्या बढ़ गई थी।

५—सोना प्रचलन में से गायब होगया था यद्यपि देश से सर्वतः नहीं हुआ था।

कमेटी का निर्णय को सब लोगों ने स्वीकार ठहराया। कमेटी ने अपने विवरण में इन ऊपरी बातों पर अपनी राय निम्न लिखित प्रकट की:—

१—एक्सचैंजकी धातुओंमें कभी विदेश भेजनेके लिए उसके मार्गव्यय में कभी अन्तर नहीं पड़ सकता और न उसके बीमाही में इतना अन्तर देने वाला व्यय ही होता है।

सावरेन का मूल्य फ्लैनिश सिक्के में प्राय: ३४$\frac{1}{2}$ फ्लैनिश शिलिंग के बराबर था। यह दोनों ओर की धातु का मूल्य था जो चांदी के हाजिर भाव के अनुसार लगाया गया था जिसे "प्रचलन का सम भाव" के नाम से दोनों स्थान में अर्थात् हैमबर्ग और लन्दन में कहते थे।

कमेटी ने ऋण के विषय में सम्मति दी कि लन्दन वालों को जो हमबर्ग में अपना ऋण देना है उस में अवश्य कुछ अन्तर होगा। क्योंकि वह ऋण लन्दन में जहां संग्रह किया जायगा किसी प्रकार से न्यून हो। कमेटी ने राय दी कि ऋण विशेष न होना चाहिए। उस धन में केवल मार्गव्यय और सम्मिलित किया जाय। इस से ज्यादा किसी हालत में ऋण के धन की संख्या न बढ़ना चाहिए। इस व्यय का हिसाब लगाते हुये जो ज्यादा से ज्यादा ७ प्रति सैकड़ा होगा अर्थात् प्रत्येक पौंड पर २½ फ्लेनिश शिलिंग हुआ।

इसके अलावा प्रचलन के भाव के अनुसार एक पौंड का ऋण जो लन्दन मे है वह हमबर्ग में २९ फ्लैनिश शिलिंग में बेंचा जाता था।

इस विषय में कमेटी ने अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट किया:—

जो अन्तर इस समय है या इससे अधिक भी हो जिसका हिसाब इस समय नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह अन्तर इंग्लैंड बैंक के अपरिवर्तित नोटों के अधिक परिमाण में निकालने के कारण था। एक ऋण जो लन्दन में देना है वह वहां के कागज में भुगताया जायगा यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। यदि ऋणी सोने में ऋण देना चाहे तो उसे सोना मोल लेना पड़ेगा और एक पौंड का कागजी नोट १ पौंड सोने के मूल्य से बहुत कम था।

तीसरा मन्तव्य इस प्रकार समिति उपस्थित करती है :—

सोने का वाजार भाव किसी अंश तक टकसाल के भाव से नहीं बढ़ सकता। यह तब हो सकता है कि जब करन्सी जिसमें कि सोना जमा किया गया है और उसका भाव नियत किया गया है, वह सिक्के के पूरे मूल्य से नीचे घट गई हो।

चौथा मन्तव्य तीसरे का न्यायानुकूल उत्तर था:—
४— कमेटी कहती है कि सोने के बाजार की कीमत और टकसाल की कीमत का अन्तर भली प्रकार से बैंक आफ इंग्लैंड के नोटो की घटी का अन्तर बताता है। कमेटी आगे चल कर अपील करती है कि उसकी सम्मति मे जबतक नगद भुगतान में बन्धन रहेगा तब तक बैंक आफ़ इंग्लैड अपने नोटों को निकाल कर एक्सचैंज द्वारा उनकी रक्षा नहीं कर सकता।

अन्त मे कमेटी जोरदार शब्दों में सम्मति देती है कि नगद भुगतान शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाय। कमेटी की राय है कि कभी भी अधिक परिमाण में कागजी प्रचलन स्थायी तथा अस्थायी रूप से बढ़ा कर रक्षा नहीं की जा सकती है। नगद भुगतान किसी हालत में भी नहीं रोकना चाहिये।

कमेटी की राय को पार्लियामेन्ट ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उस समय दो दल होगये थे और वे एक दूसरे के विरुद्ध थे। उस समय युद्ध भी जारी था। किन्तु सन् १८१३ में नेपो-

लियन का युद्ध समाप्त हुआ और लीपजिग में संधि पत्र पर हस्ताक्षर हुये। इसके उपरान्त खूब ही सट्टा चला जो व्यापार को एकदम गिरा देने वाला था। दो वर्ष में २८ बैंक अपना दिवाला निकाल चुके थे। सौ बैंक बर्बाद होगये और उनके नोटों की बाजार में कोई साख नहीं रही। प्रदेशिक बैंकों पर सन् १७९७ का कानून नगद भुगतान के विषय का लागू नहीं था और ये लोग अपना कर्ज बैंक के नोटों में देने लगे और इस प्रकार उनका प्रचलन बढ़ गया। उनके प्रचलन की संख्या यहां तक बढ़ गई कि उसका कोई हिसाब सरकारी या गैर सरकारी रूप से नहीं लगाया गया। सन् १८१४ की असफलता ने प्रदेशिक बैंकों में भी प्रचलन की संख्या न्यून करदी। यही नहीं इस न्यूनता द्वारा सोने की कीमत को भी गिरा दिया। अर्थात् सन् १८१६ में सोने का बाजार भाव ३ पौंड १८ शि० ६ पेंस होगया और पैरिस और हमबर्ग के प्रचलन उस समय समभाव से ऊपर बढ़ गये।

बैंक आफ इंग्लैंड की साख को अब होश हुआ। उसने नोटों के बदले सोना देना जारी कर दिया। तब से इंग्लैंड ने अपरिवर्तित कागजी सिक्का निकालने का कभी विचार नहीं किया।



१५ वां प्रकरण।

बैंक चार्टर एक्ट—१८४४



सन् १८४४ में बैंक चार्टर एक्ट द्वारा नोटों के बदले में सोना देना अस्वीकृत ठहराया गया। इस क़ानून के पास होने पर बाजार में नोटों के विषय में बड़ी गड़बड़ी फैल गई थी। इस गड़बड़ी ने बैंक आफ इंगलैंड को अपना कार्य करना कठिन कर दिया। यह शिकायत बैंक आफ इंग्लैंड तथा प्रादेशिक बैंक दोनों के सम्बन्ध में अधिक नोट निकालने के विषय में थी। तदुपरान्त दो विरुद्ध सिद्धान्त सामने आये। अपने २ सिद्धान्त के पक्ष वाले निज के सिद्धान्तानुसार नोट निकाला चाहते थे। ये दो सिद्धान्त 'मुद्रा प्रचलन सिद्धान्त' 'और बैंकिंग सिद्धान्त' थे। "प्रचलन सिद्धान्त" वालों ने इस तरह अपना मत प्रकट किया कि नोट निकालते समय इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि जितने मूल्य के वे निकाले जायँ उतने अंशका सोना रखा जाय। इस विषय की एक जांच की। कमेटी के सामने लार्ड ओवरस्टन ने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की थीः—धातु का प्रचलन अपने असली मूल्य की सत्यता पर स्वयं जारी रहेगा किन्तु कागज़ी द्रव्य का असली मूल्य न

होने के कारण उसके मूल्य की स्थिरता के लिये एक कृत्रिम नियम की आवश्यकता है । कागजी प्रचलन का उपयोग, मित व्यय और सुविधा के लिये किया जाता है परन्तु यह आवश्यक है कि कागजी प्रचलन का मूल्य वही रखा जाये जो धातु के सिक्के का है और तब तादाद दोनों की एकसी रहनी चाहिये । करन्सी की सारी गड़बड़ इसी बात के न होने से हुई है । इस बात के न होने पर धातु के प्रचलन का अन्तर और कागजी प्रचलन के मूल्य की घटा बढ़ी दूर हो जायेगी । इसके विरोधी बैंकिंग सिद्धान्त वाले जोर देते थे कि बैंकर को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो नोट वह निकाल रहा है उनका उपयोग वास्तव में बैंकिंग सौदों के लिए होता है अथवा बाहरी व्यापारिक प्रवाहों के सट्टे में । यदि नोटों की तादाद आवश्यकता से अधिक है, तो अधिक संख्या वाले नोटों को उनके बदले में उतना रुपया देकर प्रचलन से हटा लेना चाहिये ।

इस पर श्रीयुत् गिलबर्ट का कहना है कि प्रादेशिक बैंकों को अपने यहां से सोने के आवागमन के अनुसार अपने नोट निकालना जारी करना चाहिये । आपकी राय में प्रादेशिक प्रचलन स्थानीय कारणों से अर्थात् फसल की दशा और व्यापार से घटता बढ़ता है । इस प्रकार ये सिद्धान्त एक दूसरे के विरुद्ध मत के थे; किन्तु इनमें सत्यता अवश्य थी ।

प्रचलन के सिद्धान्त वालों का यह कहना बहुत ठीक था कि नोटों के निकालने पर उनके बदले में बैंकों को सोना देना पड़ेगा। अतः उन्हें देश के सोने पर कड़ी निगाह रखनी चाहिये। पर उनने यह विचार न किया कि कागजी प्रचलन धातु प्रचलन को बढ़ाता है और नोट तो केवल उसके बदले का रूप है। जिस प्रकार पेड़ की शाखाएं प्रशाखाएं बढ़ती हैं किन्तु वास्तव में वह पेड़ की ही उन्नति है इसी प्रकार नोटों का प्रचलन भी एक प्रकार से धातु के प्रचलन की ही अभिवृद्धि है। नोट वास्तव में बदले का रूप है और व्यापार के लिये वह अनिवार्य है। सोने की कमी नोटों के निकालने से पूरी की जा सकती है। यदि यह सिद्धान्त व्यवहार में लायाजाय और नोटों की तादाद उतनी ही हो कि जितनी तादाद का सोना संरक्षित कोष में हो तो कागजी प्रचलन की घटा बढ़ी, जो व्यापार में महत्व पूर्ण कार्य करती है, नष्ट हो जायेगी। इनके विरोधी नोटों का निकालना केवल व्यापारिक कार्य के लिये आवश्यक समझते हैं। यदि यह संभव हो तो ठीक है। परन्तु प्रत्येक अवसर पर बैंकर इस बात की जांच नहीं कर कर सकता कि लेने वाले को किस लिये नोट की आवश्यकता है और जिन आर्थिक समुदायों की वह वृद्धि करता है उस समय वह उन पर बहुत कम विचार करता है। यह बात ठीक है कि बैंकरों को नोटों से सट्टा करना रोकना चाहिये। इस विवेचन से यह प्रकट होगया कि कोई भी सिद्धान्त व्यवहार में

लाने योग्य नहीं है। इसके उपरान्त फ्रेमर्स कानून जो लार्ड ओवरस्टोन की सी सम्मति देता है। इस प्रकार है:—

१—बैंक आफ इंग्लैंड के दो भाग होने चाहियें एक तो नोट प्रकाशन विभाग और दूसरा बैंकिंग विभाग। दोनों का कार्य एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र रखा जाये।

२—नोट प्रकाशन विभाग में १७,००० पौंड मूल्य तक के बन्धक रखे जायें और इतने मूल्य के नोट निकाले जायें। सब प्रकार के सिक्के और धातु जिनका हाल में कोई उपयोग न हो नोट प्रकाशन विभाग में सम्मिलित रहे। यदि १४,०००,०० पौंड से अधिक के नोट प्रकाशित किये जायें तो उनके लिये प्रकाशन विभाग में उतने ही मूल्य का सोना रहना आवश्यक है।

३—नोट प्रकाशन विभाग में चांदी की तादाद सोने के सिक्के और धातु की तादाद के चतुर्थांश से कभी कम न होनी चाहिये।

४—प्रत्येक व्यक्ति नोट प्रकाशन विभाग से नोटों के परिवर्तन में सोना ३ पौंड १७ शि० ९ पेंस प्रति औंस के हिसाब से ले सकता है।

५—इस कानून के पास होनेपर यदि कोई प्रादेशिक बैंक नोट प्रकाशन बंद करदे तो हिज मैजेस्टी इन कौंसिल की आज्ञानुसार

बैंक आफ इंग्लैंड को अधिकार हो कि वह अपने नोट प्रकाशन विभाग में इस कमी को पूरा करने के लिये $\frac{2}{3}$ भाग बंधक अपने विभाग रख सके और इतने ही परिमाण के नोट निकाल सके।

६—नोट प्रकाशन का ब्यौरा, प्रकाशन विभाग में सोनेचांदी के सिक्के व धातु की तादाद, पूंजी की तादाद, और संरक्षित धन बैंकिंग विभाग का द्रव्य और बन्धक आदि विवरण प्रत्येक सप्ताह लंदन गजट में प्रकाशित होना चाहिये।

७—बैंक आफ इंग्लैंड के नोटों पर किसी प्रकार का रसूम नहीं लगाया जाय।

८—रसूम से मुक्त होने के कारण बैंकको प्रति वर्ष १८०, ००० पौंड सरकार को देना चाहिये।

९—१४०००००० पौंड से ऊपरी की तादाद का लाभ नोटों के निकालने पर का बैंक के हिस्से दारों को बांट देना चाहिये।

१०—संयुक्तराज्य में बैंक के सिवाय कोई व्यक्तिगत नोट नहीं निकाल सकता है कि जिनका रुपया मांग पर दिया जाय।

११—इस कानून के पास होने पर कोई बैंकर करन्सी सिद्धान्त के अनुसार रुपया देने वाले नोट नहीं निकाल सकते हैं

जो बैंकर ६ मई सन् १८४४ के पूर्व तक इस प्रकार के नोट निकालते रहे हैं।

१२—इस प्रकार के कोई बैंकर का दिवाला निकल जाय या वह नोट निकालना बन्द कर दे तो फिर दुबारा उसे निकालने की आज्ञा न दी जाय।

१३—प्रत्येक बैंकर को जिन्हें नोट निकालने का अधिकार दिया गया है वे रसूम वसूल करने वाले सरकारी अफ़सर के पास २७ अप्रेल सन् १८४४ से तीन २ मास के नोट प्रकाशन का एक ब्यौरा भेजा करें और कोई बैंकर इस अवधि का उल्लंघन न करे।

१४—यदि मासिक औसत कभी नियत तादाद से बढ़ जाय तो बैंक को वृद्धि उतनी तादाद जप्त कर लेना चाहिये।

१५—प्रत्येक बैंकर को जिन्हें नोट निकालने का अधिकार दिया गया है प्रति सप्ताह रसूम वसूल करने वाले सरकारी अफ़सर के पास नोट निकालने का ब्यौरा भेजना चाहिये जो लंदन गजट में प्रकाशित होगा।

१६—प्रत्येक वर्ष रसूम विभाग में हर एक बैंकर को अपने अपने नाम भेजना चाहिये।

१७—समस्त बैंकरों को भविष्य में सब प्रकार की हुंडी आदि के बेंचने, स्वीकार करने व देने आदि का अधिकार है।

किन्तु वे इस प्रकार की हुंडी नहीं निकाल सकते जिसका भुगतान अनियामित समय में किया जाय।

सबसे पहले यह ध्यान देने की बात है कि प्रकाशन विभाग का कार्य बहुत ठीक है। यदि सोना दिया जाय तो बैंकको उसे अवश्य खरीदना चाहिये और इतने सोने के परिवर्तन में अवश्य नोट निकालना चाहिये। यदि नोट की आवश्यकता जनता को न हो तो वे बैंकिंग विभाग में रक्खे जायें। प्रत्येक नोट जो बैंक से निकाला जाय उसके मूल्य का सोना बैंक संरक्षित रक्खें। केवल १४,०००,००० पौंड के नोट बन्धक द्वारा निकाले जा सकते हैं जिनके लिये सोना रखने का नियम लागू नहीं है। यह विशेष प्रकाशन—'सम्मिलित प्रकाशन" के नाम से कहा जाता है। ५ वे नियम के अनुसार जिसका प्रकाशन होता है जिसकी क्रमानुसार वृद्धि आजकल १८,४५०,००० पौंड होगई है। यहां तक कानून प्रचलन सिद्धान्त से अपने को अलग रखता है। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि कानून धीरे २ नोट प्रकाशन का अधिकार प्रादेशिक बैंकों से छीन कर इंग्लैंड बैंक को सर्वाधिकार सौंपना चाहता है। प्रादेशिक बैंकों पर कठिन बन्धन बांध कर उनके अधिकारों को छीनता है। इससे कानून का यह मन्तव्य नहीं है कि प्रादेशिक बैंक जो नोट प्रकाशित करते हैं वे अमान्य हैं किन्तु समस्त नोटों का प्रकाशन एक मध्यवर्ती शक्तिशाली बैंक से हो जो आसानी से उनके प्रचलन का प्रबन्ध कर सके जो कार्य कई छोटे २ बैंकों से श्रेष्टतर है।

नियम ११, १२ और १३ के अनुसार प्रादेशिक प्रचलन की संख्या घट रही है अर्थात प्रादेशिक बैंक कम होते जा रहे हैं और उनका प्रचलन जो आजकल होता है वह केवल स्थानीय होता है। प्रारम्भ में सन् १८४४ में इंग्लैंड और वेल्स में २७९ बैंकों को ८,६३१,६४७ पौंड तक के नोट निकालने का अधिकार दिया गया था। परन्तु वह धीरे २ कम होते २ उन बैंकों की संख्या ६ पर पहुंच गई और नोट निकालने का अधिकार केवल ३२४,४५० पौंड का रह गया। यह संख्या पूर्व के आधे से भी कम है।

सन् १८४४ के इस कानून पर अब भी वादाविवाद होता रहता है। क्योंकि पहले यदि लाभ जनक बताते हैं तो दूसरे सामाजिक स्थिति को नाशकारक प्रकट करते हैं। यहां पर हम इस कानून पर विचार करें कि इसके क्या सिद्धान्त थे और उनकी पूर्ति कहां तक हुई।

श्रीयुत् रावर्ट पिल इस कानून पर इस प्रकार कहते हैं:— साधारण व्यक्ति इस कानून से यह समझेंगे कि कानून के कड़े नियम बैंक की शक्ति कम करने वाले हैं और उन्हें सावधानी से कार्य करने को उत्तेजित करते हैं, जब व्यापारिक संसार में गड़बड़ी पैदा हो देश की आर्थिक अवस्था ठीक हो। किन्तु कानून का उद्देश्य यह है वह उन सभी शिकायतों को दूर करे जिनने सन् १८२५, १८३६ और १८३९ में देश

को दुःख पहुंचाया है। इन शिकायतों को उत्तेजित करने की अपेक्षा उनको दूर करना ही ठीक है।

दूसरे महाशय ने इसके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया। आपने कहा कि इसका कार्य सट्टा करने और दिवाला निकालने से बचाने का था अब कानून न उस प्रकार करेगा और न सम्मति देगा। कानून का परिवर्तित रूप साख बढ़ाने का है और वह साख अवश्य बढ़ेगी। तदुपरान्त; हम यहां इस कानून के विषय में कुछ सम्मतियां प्रकट करेंगे जिन से स्पष्ट होगा कि यह कानून देश के लिए लाभकारी हुआ या नहीं। इसने अपने उद्देश्यों की पूर्त्ति की या नहीं। व्यापारिक शिकायतों को और साख पर इसने कहां तक कार्य किया है। परन्तु हमें उत्तर मिलता है कि; "नहीं"। यह कानून दोनों बातों में नाकामयाब रहा। सन् १८४० में कानून के पास होने के ३ वर्ष बाद सन् १८५७ में और १८६६ में इंग्लेंड की ऐसी कठिन स्थिति हो गई थी जिसने त्रास उपस्थित कर दिया था और हरएक सूरत में यह आवश्यकीय जान पड़ा कि कानून का वह नियम मिटा दिया जाय जिसमें वह इग्लैंड बैंक को नियत संख्या से अधिक संख्या पर अधिक बन्धक द्वारा नोट निकालने से मना करता है। अन्त में यह प्रकट हुआ कि कानून का वह नियम रोक दिया गया है और प्रत्येक नोट पर बैंक से सोना मिलता है चाहे उसके प्रति सोना संरक्षित रखा गया हो या न रखा गया हो। इस समय बैंक की आर्थिक स्थिति भयानक होगई थी।

कानून व्यापरिक शिकायतों को दूर करने और बैंक आफ इंग्लैंड के नोटों की पारवितन दोनों काया में नाकामयाब हुआ। संक्षिप्त में इस नाकामयाबी के कारण यह थे:—

किसी ने पूरे तौर से यह नहीं सोचा कि बैंक आफ इंग्लैंड जनता को प्रत्येक नोट का सोना देने को मजबूर नहीं था किन्तु उसे बैंकिंग विभाग के समस्त संरक्षण के प्रति भी सोना देना पड़ता था और यह सब सोना केवल उसी एक संग्रह से आना चाहिये।

कानून ने बैंक को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया था। और यह शर्त रखी थी कि समस्त सोना केवल थोड़ा सोना आवश्यकता के लिये छोड़कर प्रकाशन विभाग में भेज देना चाहिये। कानून के बनानेवालों ने यह सोचा होगा कि यदि यह सब सोना खींच लिया जाय तो बैंक की जवाबदेही केवल नोटों के रूपमें ही रह जायगी जिससे कर्जदार अपना हाथ मलते बैठेंगे; किन्तु सोने का यह समस्त संग्रह बैंकिंग विभाग पर चेक निकाल कर ले लिया जा सकता है, जिससे बैंक की नोटों की जिम्मेदारी किसी प्रकार कम नहीं होती है। नोटों के के परिवार्तिन का एक उपाय केवल यही था कि चेक लेने से इन्कार कर देना जिससे थोड़े ही समय में बैंक का दिवाला निकाला जाता।

कानून ने बैंक के दोनों विभागों को स्वतंत्र रखा किन्तु संरक्षित सोना नोटों के प्रति ही नहीं था किन्तु अन्य संरक्षक

बन्धकों के प्रति भी था। जो संरक्षक बन्धक बैंकिंग बिभाग के सम्बन्ध का था।

श्रीयुत् बारिंग ने सन् १८४७ का विग्रह समाप्त होने पर कहा था कि, बन्धक और संरक्षण के कार्यों पर अच्छी तरह से विचार नहीं किया गयाहै। चाहें वे इस कानूनके माननेवाले हों या उसके विपक्षी हों। आपने बताया कि यह समझ में नहीं आता कि ७,०००,००० पौंड का सोना बैंक में से निकल जाय और तब प्रचलन के नोटों की संख्या घटने की अपेक्षा बढ़ती जाय।

इस कानून ने उसके बनाने वालों की आशाओं को पूरा नहीं किया। और किसी न किसी प्रकार यह कानून कामपर लाभ दायक नहीं हुआ। यद्यपि कानून में बहुत सी बातें लाभदायक थीं और बहुत से स्थानों पर संशोधन का भी प्रस्ताव हुआ परन्तु बहुत समय से उसके हटा लेने की जोर दार अपील चारों ओर से हुई। कानून सट्टा बन्द करने में असमर्थ रहा। परन्तु अब लोगों की यह साधारण धारणा है कि यह सट्टा दूर नहीं हो सकता और कुछ मितव्ययी रूपमें जारी रहना लाभ-दायक है। आधिक सट्टा समस्त श्रेणी के व्यापारियों के एकत्र हो जाने पर दूर हो सकता है। यदि व्यापारी, बैंकर, साहूकार बनिया सब एकत्र हो जांय और व्यापारिक संसार के उन्नत मय विचारों को प्राप्त करें जो उनके अनुभव द्वारा व्यापारिक क्षेत्र में प्रकट हों तो सट्टे का अस्तित्व भी नहीं रह सकता।

तदुपरांत् कानून कहता है कि, बैंकर अधिक नोट अपने पास संरक्षण कोष रख कर निकाल सकते हैं। वह संरक्षण बैंक आफ़ इंग्लैंड के नोटों का होना चाहिये। जो कितना खतर नाक और भद्दा तरीका है। जनता नोटों के संरक्षण रखने के विषय में बैंकरों का किस तरह विश्वास करे। सचमुच यह बन्धन न्यायानुकूल नहीं है। परन्तु इसके बाहर कानून जो कहता है वह ठीक है। यह कहना कि साख के लिए बैंक आफ़ इंग्लैंड में उतना ही सोने का संरक्षण धन रहेगा जिसका स्पर्श कानून के अनुसार नहीं किया जायगा। केवल उसी समय किया जायगा कि जब उतनी संख्या के नोट प्रचलन में से हटा लिये जायेंगे।

प्रत्येक नोट १८,४५०,००० पौंड के ऊपर निकालने पर प्रकाशन विभाग में उसका सोना होना चाहिये। इस प्रकार बैंक का सोना कभी कम न होगा जब तक कि बैंक के नोट प्रचलन में से १८४५०००० पौंड से कम की संख्या में न हो जायें। अभी तक इन नोटों की संख्या कम नहीं हुई है। एतदर्थ कठिन से कठिन समय के लिए संरक्षित सोना रहताहै जिसका स्पर्श कभी नही होता। कानून की यह सब से मार्के की बात है। इस संरक्षण सुवर्ण पर बहुत कुछ वादा विवाद हुआ। सरकार द्वारा भी इसका विरोध हुआ परन्तु अन्त में बैंक को ही सफलता हुई और कानून यह नियम जैसा का तैसा बना रहा।

सामान्य से साम्पातिक स्थिति मजबूत होने के कारण इंग्लैंड बैंक के नोटों का प्रचलन बराबर जारी रहा। उन पर किसी का

लेश मात्र भी सन्देह नहीं हुआ। कठिन से कठिन समय पर भी जनता इन नोटों को लेने को तैयार थी केवल बात इतनीही थी कि उनका प्रचलन नियमित संख्या में था। यदि लोग नोट लेने से इन्कार कर दें और सोना लेने को दौड़ें, तब सर्वसाधारण के भुगतान एक दम रोक देने के सिवाय और दूसरे उपाय से उसका रक्षण नहीं हो सकता।

किन्तु इंग्लैंड में अब तक ऐसी स्थिति उपस्थित नहीं हुई है। यद संरक्षण इंग्लैंड की सामाजिक अवस्था के लिए अत्यंत महत्व पूर्ण है। इंग्लैंड ऐसा देश जिसका व्यापार विदेश से अधिक होने पर भी उसे विदेश का देना भी रहता है। इसी लिए कभी सोने के आयात की आवश्यकता पर यह संरक्षण बड़ा काम देगा। अन्त में एक बात इंग्लैड के कई स्थानों पर जर्मनी की "लचीली पद्धति" की बड़ी आवश्यकता है। सरकार ने भी शायद इस विषय में कुछ काररबाई की। परन्तु बैंक आफ़इंग्लैंड ने यह प्रकट किया कि जर्मनी की पधति के संपादन कार्य का अधिकार उसे दिया जाय। वह इसका प्रबन्ध करेगा परन्तु अभी तक सरकार और बैंक दोनों में निपटारा नहीं हुआ है। यह बात अवश्य है कि जर्मनी की बैंकिंग स्थिति और इंग्लैंड की बैंकिंग स्थिति में में बड़ा अन्तर है। बर्लिन संसार के लिए सोने का स्वतंत्र बाजार नहीं है। और वह इंग्लैड के लिए बिलकुल हानिकारक है। इंग्लैड सोने का स्वतन्त्र बाजार है और कई विद्वान अंग्रेजों की राय है कि जर्मनी में जो कर नियत है और सदैव जो अन्य बन्धन लगाये जाते हैं इंग्लैंड के लिये बिलकुल हानिकारक हैं।